श्री रामचंद्रगणी विरचित.

श्री कुमारविहारशतक.

मूल, अवचूरि, भावार्थ अने विशेषार्थ सहित.

MOTICHAND G

श्री रामचंद्रगणी विरचित.

श्री कुमार विहार शतक.

मुनिराजश्री हंसविजयजी महाराजनी प्रेरणाथी

अने.

श्री कच्छ मांडवीना श्री संघनी, तेमज अमदावाद पांजरापोळना
उपाश्रयना वहिवटकर्त्ता हस्तक उपजेल ज्ञानखातानी द्रव्य सहायथी,

छपावी प्रसिद्ध करनार.

श्री जैन आत्मानंद सभा.

भावनगर.

वीर संवत् २४३६. आत्म संवत् १४ विक्रम संवत् १९६६.

श्री आनंद प्रीन्टींग प्रेस—भावनगर.

प्रस्तावना.

आ अनादि अनंत विश्वक्रमने विलोकतां एम तो अनुभव थाय छे के, आ विश्वनी अंदर रहेला आत्माओनी शक्तिओमां अनेक चमत्कारो रहेला छे. ते सर्वमां बुद्धिना चमत्कारो विशेष बळवान् छे. क्षायोपशमथी सतेज थयेली बुद्धिओ केवा केवा वाणीना विलासो प्रगट करे छे, ते आर्य जैन साहित्यमां प्रत्यक्ष देखाय छे, अने तेथीज जैन साहित्य आर्यावर्त्तमां उत्कृष्ट पद भोगवे छे.

आ विश्वने हस्तामलकवत् जोनारा महात्माओ—केवलीओ कहे छे के, आत्मानी गुफा रुप अंतःकरणमां दिव्यगान-नाद-शब्द अति सूक्ष्म छतां दिगंतगामी शक्तिवाळा अनुभवाय छे, अने ते काव्य रुपे बाहेर प्रगट थइ बीजाने आनंद रसना सागर रुप बने छे, जेना श्रवण-मननथी धर्म, भक्ति, नीति अने व्यवहारनी शुद्ध भावनाओ प्रगट थाय छे.

आ उपरथी जोवामां आवे छे के, ए अंतरनुं दिव्य गान कोइ अनुपम अने रसमय तरंगमां चाली रह्युं छे. तेमांथी जेनी जेवी शक्ति तेटलुं सर्वे ग्रहण करी कही शके छे, अने ते माटे अमुक

अंशे कही बतावनारने कवि नामथी ओळखवामां आवे छे. ते कवि रस अने अलंकारना चमत्कारथी पोतानी वाक्शक्तिने फोरवे ते कविता कहेवाय छे. आवी रीते कवि अने कवितानो संबंध छे, तेने जे यथार्थ रीते जाणे छे, ते सहृदय वाचक (विद्वान्) कहेवाय छे. ए काव्य रसनुं दिव्य गान आखा विश्वमां निरंतर चालु छे, अने दरेक क्षणे अने स्थळे तेना अद्भुत आनंदनो आस्वाद सर्व अधिकारीने मळ्या करे छे.

संस्कृत साहित्यमां काव्यना केटलाएक भेदो आपेला छे. तेमां महा काव्य अने खंड काव्य एवा बे भेद पण दर्शाव्या छे, अने तेना जुदा जुदा लक्षणो आपेला छे. आ ‘ कुमारविहार शतक ’ ए खंड काव्यमां आवी शके छे. आ काव्यना कर्त्ता महानुभाव श्री रामचंद्रगणीए पोतानी असाधारण नैसर्गिक काव्य प्रतिभाथी आ लघु काव्यने सर्व रीते अलंकृत कर्युं छे. अने अगाध साहित्यथी भरेली महा संस्कारी अनुपम देवगिरामां ग्रथन करी तेने रसभरित बनावेलुं छे. दरेक वर्णनीय वस्तुने सूक्ष्म दृष्टिथी अवलोकतां जाणे तेनुं रहस्य पोतानी सूक्ष्म बुद्धिना तर्कोनुं अने स्वानुभवना सूक्ष्म तत्त्वोनुं मिश्रण करी उपजावी काढयुं होय एम लागे छे. वळी मनुष्यना स्वभावनी सूक्ष्म लागणीओने, विद्वानोनी जिज्ञासाओने अने जैन भक्तोनी आंतर भावनाओने अनायासे आ महा कवि

पोतानी अकृत्रिम वाणीमां उतारता होय अथवा तो तेमनुं पवित्र हृदय पोतेज पोतानुं भावना चित्र आलेखतुं होय एवो भास थाय छे.

महानुभाव श्री रामचंद्रगणीनी अगाध काव्य प्रतिभा होवाथी ते समयना अनेक विद्वानोए अने कविओए तेमना काव्यनी भारे प्रशंसा करेली छे. सूक्ष्म अवलोकन करतां एम पण स्फुरणा थाय छे के, संस्कृत लेखनां केटलांक मान्य शतकोना कर्त्ताओ पण आ कुमारविहार शतकनी शैलीथी मोहित थइ एवां शतको रचवा प्रयासी थया हशे. केटलांक तो ए मोहने लइने आ शतकनी अवचूरि, वृत्ति वगेरे करवाने तत्पर पण बन्या छे.

वळी आथी सर्वने सविशेष सानंदाश्चर्य थशे के आ महानुभाव श्री रामचंद्रगणी कवीश्वरे पोताना निर्माण कौशल्यथी शणगारेला अने साक्षरो अने प्राकृतो सर्वना मनने रंजन करनारा बीजा एकसो ग्रंथो रचेलां छे. तेओमां निर्भय भीमव्यायोग, रघुविलास नाटक, द्रव्यालंकार, राघवाभ्युदयमहाकाव्य, यादवाभ्युदयमहाकाव्य अने नलविलास महाकाव्य आदि घणां ग्रंथो प्रख्यात छे.

महानुभाव रामचंद्रगणीनुं जीवनवृत्त जाणवा जेवुं हशे, पण तेमनी सांसारिक

स्थितिनो इतिहास यथार्थ रीते जाणवामां आवी शक्यो नथी, मात्र तेमनी चारित्रावस्थानो केटलोएक वृत्तांत आ प्रमाणे उपलब्ध थइ शक्यो छे. महानुभाव रामचंद्रगणी विक्रमना बारमा सैकाना अंतथी ते तेरमा सैकाना आरंभ सुधीमां विद्यमान हता. तेओ कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचंद्रसूरिना प्रख्यात शिष्य हता. तेमने 'प्रबंध शतक कर्तृ' एवुं बिरुद मळ्युं हतुं. तेमनी व्याख्यान करवानी शक्ति सर्वोत्तम हती अने तेथी तेओ लोकप्रिय थइ पड्या हता.

गुर्जरपति जैन महाराजा श्री कुमारपाले अणहिलपुर पाटणमां पोताना पिताश्री त्रिभुवनपालना नामथी रचावेला प्रासादनी अंदर श्री हेमचंद्रसूरिए प्रतिष्ठित करेला श्री पार्श्वनाथ प्रभुने अष्ट नमस्कारात्मक स्तवन रुप वस्तु स्वरुपने उद्देशीने ते महानुभावे आ अद्भुत काव्य लेखनी योजना करेली छे. अने तेनी अंदर ते कुमारविहार—चैत्यनी अद्भुत शोभानुं चमत्कारी वर्णन आपेलुं छे. जो के केटलेक स्थळे अमर्याद अतिशयोक्ति दर्शावेली छे, तथापि कविताना ओज, प्रास विगेरे गुणोने लइने अने एक उत्तम कविओना संप्रदायने लइने ते अतिशयोक्ति सहृदय विद्वानोना हृदयने आकर्षक अने वस्तु स्वरुपनी पोषक बनेली छे.

जे कुमारविहार चैत्यनुं आ महानुभावे वर्णन करेलुं छे, तेने माटे अवचूरिकार पण वीर संवत

१९९९ मां आ प्रमाणे लखे छे—"वीर संवत १६९९ ना वर्षमां कार्तिक शुक्ल द्वितीयाने दिवसे हस्त नक्षत्रनो सूर्य थतां श्री पाटण नगरमां जेमने त्रीश वर्ष अने सत्यावीश दिवस राज्य करतां थयेला छे," एवा कुमारपाले पोताना पिता त्रिभुवनपालना नामथी प्रासाद कराव्यो हतो. ते प्रासादने बोंतेर देव कुलिका हती. तेमां चोवीश रत्ननी, चोवीश पित्तल तथा सुवर्णनी, अने चोवीश रुपानी—अतीत, अनागत अने वर्त्तमान जिनेश्वरोनी प्रतिमाओ हती. मुख्य प्रासादनी अंदर एकसो पचवीश अंगुल प्रमाण चंद्रकांतमणिनी प्रतिमा हती. सर्वत्र कलशो अने स्तंभो सुवर्णना हता. एकंदर छंनु कोटी द्रव्यनो व्यय करी गुर्जरपति कुमारपाले ते प्रासाद कराव्यो हतो. ते महाराजाए मोटो उत्सव करी श्री हेमचंद्रसूरिनी पासे ते चैत्यमां श्री पार्श्वनाथ प्रभुनी प्रतिष्ठा करावी हती.

आ शतकनी रचना केवी रीते थइ तेने माटे अवचूरिकार आ प्रमाणे लखे छे—एक वखते श्री हेमचंद्रसूरि पोताना मुख्य शिष्य श्री रामचंद्रगणी अने बीजा मुनिओना परिवार साथे नागपुरमां चातुर्मास्य रह्या हता. ते चातुर्मास्य निर्विघ्ने प्रसार थया पछी महाराजा कुमारपाले तेमने परिवार साथे पाटणमां आववाने विनंति करवाथी तेओ पाटणमां पधार्या हता. आ वखते आंबडदे, बा-

हरुदे, चाहरुदे अने सोल नामना चार भाइओ, नवाणुं लाख द्रव्यना अधिपति छाडा प्रमुख, अढारसो कोटीश्वर वेपारीओ अने बोंतेर सामंतोना परिवारथी परिवृत थइ सूरीश्वरनी पाटणमां आवेला ते त्रिभुवनपाल प्रासादमां पधरामणी थइ हती. आ वखते कवीश्वर रामचंद्रगणी साथे हता. ते सूरिवर ज्यारे ते प्रासादमां बीराजेला श्री पार्श्वनाथ प्रभुने वंदना करता हता, ते अवसरे महाराजा कुमारपालनी प्रार्थनाथी तेमणे अष्ट नमस्कारात्मक आठ काव्यनी योजना करी हती. अने एकसो आठ श्लोकोथी ते प्रासादनुं वर्णन कर्युं हतुं.”

आ प्रमाणे अवचूरिकार श्री विबुधोत्तम सुधाभूषणगणी अवचूरिना आरंभमां ग्रंथकारनो वृत्तांत आपे छे अने आ शतक काव्य उपर थयेली पोताना हृदयनी प्रसन्नता प्रगट करे छे. महानुभाव श्री विबुधोत्तम सुधाभूषणगणी श्री सोमसुंदरसूरिना परिवारमां उत्पन्न थयेला छे अने तेमणे आ काव्यपर अवचूरि बनावी अभ्यासीओनी उपर महान् उपकार करेलो छे.

एकंदर महानुभाव रामचंद्रगणीए आ शतकमां जे कवितानुं सौंदर्य दर्शाव्युं छे, ते आखा जैन साहित्यनुं उच्च स्वरूप छे. पद अने अर्थनुं लालित्य एटलुं बधुं उत्तम छे के, तेने समजनारा सहृदयने पूर्ण रस उपजावे छे अने रहस्यमां उतरतां चित्तने लीन करे छे.

जेनामां पदनी प्रसन्नता होय, अने नवीन नवीन अर्थ उठता होय, एवी कविता के जेमां तादृश चित्र समान चित्र आलेख्युं होय, तेवी उत्तम कविता आ शतकमां आद्यंत जोवामां आवे छे. तेने माटे महानुभाव रामचंद्रगणीने पूर्ण धन्यवाद घटे छे.

छेवटे आ प्रसंगे अमारे जणाववुं जोइए के, भारतवर्षना महोपकारी स्वर्गस्थ श्री विजयानंद सूरि (आत्मारामजी महाराज)ना प्रशिष्य महामुनिश्री हंसविजयजी महाराज तथा तेमना अनुयायी पंन्यास श्री संपत्‌विजयजी महाराजनी खास प्रेरणाथी अने सहायथी आ ग्रंथ प्रगट करवाने अमे शक्तिमान् थया छीए. ते महानुभावे केटलीएक शुद्ध प्रतो मेळवी आपी हती, एटलुंज नहीं पण आ ग्रंथनी शुद्धिने माटे पूर्ण काळजी राखी तेना लेखने जाते तपासी ग्रंथना गौरवमां सारी वृद्धि थाय तेवी योजना करी आपी हती. निःस्वार्थ उपकार वृत्तिने धारण करनारा अने जैन साहित्यने खीलववानी अंतरंग इच्छा राखनारा ए महानुभाव मुनिवरो के जेओ पोताना गुरुना नामथी अंकित एवी अमारी संस्थाने पवित्रकार्यमां सहाय भूत थाय छे. तेनो अमे हृदयथी आभार मानीए छीए.

उक्त मुनि महाराजाओ ज्यारे कच्छ मांडवीमां चातुर्मास रहेला ते वखते मांडवीना श्री संघ

तरफथी ज्ञान खातानी उपजेली रकम, तेमज अमदावादनी पांजरापोळना उपाश्रयना वहीवट करनार शेठ जेसंगभाइ हठीसिंग तरफथी ज्ञान खाते उपजेल रकम, महाराज साहेब श्री हंसविजयजी महाराजना सद् उपदेशथी ते बंने तरफथी आ पुस्तकनी प्रसिद्धिनी सहायमां अर्पण करवामां आवेली छे, तेने माटे ते बंनेनो आभार मानवामां आवे छे. ते रीतिनुं अनुकरण करी प्राचीन जैन साहित्यना आवा आवा उत्तम ग्रंथो प्रगट कराववा माटे बीजा पण स्वधर्मप्रेमी जैन गृहस्थो जो विशेष उमंगी थशे तो आ संस्था तेवुं कार्य करवाने सदा वधारे उत्साही रहेशे.

आ ग्रंथनी एकेक प्रत मुनिराजने, साध्वीओने, तथा पुस्तकभंडारमां मुकवा माटे सभा तरफथी भेट तरीके अर्पण करवानी छे. आवा संस्कृत अने मागधी भाषाना ग्रंथो मूळ, टीका (अवचूरि) भावार्थ, विशेषार्थ, साथे अनेक शुद्ध थइने बहार पडे एवी अमारी अंतःकरणनी इच्छा होवाथी, तेना प्रथम प्रयत्नरूपे आ ग्रंथ प्रसिद्ध करवामां आव्यो छे.

आ ग्रंथ खास करीने चकचकीत ऊंचा आर्टपेपर उपर मोटो खर्च करी छपाववामां आवेल छे. परंतु आवा उत्तम कार्योमां खर्चनी गणना करवामां आवती नथी.

आ ग्रंथमां संपूर्ण सावधानी राखी मूळ अवचूरि, भावार्थ, अने विशेषार्थ लखवामां आव्या

छे, छतां मतिभ्रमथी के प्रमादथी जो कांइ स्खलना थइ होय तो अमे मिथ्या दुष्कृत पूर्वक क्षमा मागीए छीए. अने छेवटे इच्छीए छीए के आ शतकना माधुर्यनुं आस्वादन करनार गुर्जर वाचकोने अने संस्कृत अभ्यासकोने गुर्जरी गिराना भाषांतररूपे आ शतक कंठाभूषणरूप थाओ.

“ श्री आत्मानंद भुवन. ”
वीर संवत २४३६ आत्म संवत १५
विक्रम संवत १९६६ मार्गशीर्ष शुक्ल तृतीया.

प्रसिद्धकर्त्ता.
श्री जैन आत्मानंद सभा.
भावनगर

श्री

कुमारविहारशतकम्.

तेजः पुष्णातु पार्श्वो दुरितविजयि वः शाश्वतानंदबीजं
संक्रांतः सप्तरत्न्यां भुजगपतिफणाचक्रपर्यंकभाजि ।
कर्माण्यष्टौ समंतात्त्रिभुवनभवनोत्संगितानां जनानां
यच्छेत्तुं तुल्यकालं वहति निजतनुं क्लृप्तसप्तान्यरूपाम् ॥ १ ॥

अवचूर्णिः—स पार्श्वो दुरितविजयि शाश्वतानंदबीजं तेजो वो युष्माकं पुष्णातु । भुजगपतिफणाचक्रपर्यंकभाजि सप्तरत्न्यां संक्रांतो यः त्रिभुवनजनतोत्संगितानां जनानां तुल्यकालं समंतात् अष्टौ कर्माणि छेत्तुं क्लृप्तसप्तान्यरूपां निजतनुं वहति इत्यन्वयः । सप्तानां रत्नानां समाहारः ‘ङ्यां

अस्य ङ्यांलुगित्यनेन अल्लोपे' सप्तरत्नी तस्यां सप्तरत्न्यां किंविशिष्टायां भुजगपतिफणाचक्रमेव पर्यंकः शय्या तं भजतीति । भजो विण् वृद्धौ अपयोगीदिति विण्लोपे भाज् इति सिद्धिः । दुरितं पापं विजयत इत्येवंशीलं । अजातेः शीले णिन्प्रत्यय० इन् । तेजः केवलज्ञानं परमब्रह्म वा पुष्णातु वृद्धिं नयतु । उत्संग इवाचरिता उत्संगिताः । कर्त्तुः क्विप् अवर्णेत्यल्लोपे क्ते सिद्धं । त्रिभुवनमेव भवनं गृहं तत्र उत्संगितानां स्थितानां जनानां तुल्यकालं समकालं छेत्तुं विदारयितुं तनुः शरीरं स्त्रीलिंगः । क्लृप्तानि निष्पादितानि सप्त अन्यरूपाणि यस्यां सा तां तनुं वहति य इति संबंधः ॥ १ ॥

भावार्थ—सर्पपतिना फणाचक्ररूप पलंगनी अंदर रहेला सात रत्नोमां प्रतिबिंबित थयेला श्री पार्श्वनाथ प्रभु पापनो विजय करनार अने शाश्वत–मोक्षना आनंदना बीजरूप एवा तमारा तेजनुं पोषण करो. जे प्रभु आ त्रण भुवनमां चारे तरफ रहेला लोकोना आठ कर्मो छेदवाने माटे प्रतिबिंब रूपे बीजा सात रूपो कल्पी पोतानी मूर्त्तिने एकी काळे वहन करे छे. १

विशेषार्थ—ग्रंथकार आ प्रथम श्लोकथी आशीर्वचन रूप मंगलाचरण

करे छे तेओ कहे छे के, श्री पार्श्वनाथ प्रभु तमारा तेजनुं पोषण करो. जे तेज पापनो विजय करनार अने मोक्षना आनंदनुं मूळ छे. श्री पार्श्वनाथप्रभु सर्पनी सात फणाओना समूहनी अंदर रहेला सात रत्नोनी अंदर प्रतिबिंबित थाय छे. ते वखते तेमना सात प्रतिबिंबो पडे छे, तेथी पोताना आठ स्वरूप थाय छे. ते उपर कवि उत्प्रेक्षा करे छे के, आ जगत्नी अंदर रहेला लोकोना आठ कर्मनो छेद करवाने पार्श्वनाथ प्रभुए आठ रूप करेला छे, कारण के आठ कर्मने छेदवाने माटे आठ रूप थवां जोइए. १

ते वस्तापं हरंतां नखमणिमुकुरज्योतिरंभश्छटाभि—
र्दिक्चक्रं प्रीणयंतः करिमकरभृतः पार्श्वनाथस्य पादाः ।
पद्मैर्नित्यप्रबोधैरधरितसरसां मैत्र्यमासाद्य येषां

चित्रं विच्छिन्नतृष्णाः कति परममृतं प्राणभाजो न भेजुः ॥२॥

अवचूर्णिः—श्री पार्श्वनाथस्य नखमणिमुकुटज्योतिरंजनभ्छटाभिः दिक्चक्रं प्रीणयंतः करिमकरभृतः ते पादाः वो युष्माकं तापं हरंतां नित्यप्रबोधैः पद्मैः अधरितसरसां येषां मैत्र्यं आसाद्य प्राप्य चित्रं आश्चर्यं यथास्यात्तथा विच्छिन्नतृष्णाः कति प्राणभाजः परं अमृतं न भेजुः। पदानां सरःसादृश्यं करिणो गजाः मकरा मत्स्यास्तान् बिभ्रतीति क्विप् तल्लोपे ह्रस्वस्यत इति तोंते च भृत् भिक्चक्रं दशदिक्स्थान् प्राणिनः तात्स्थ्यात्तद्व्यपदेश इतिन्यायात् प्राणिनो लभ्यंते उत्तमनरपादा अपि गजमकरलांछिता भवंति परं नित्यप्रबोधैः सदा विकसितपद्मकमलैः अधरितं अधर इव कृतं अधरितं कर्त्तुःक्विपिति क्विपि तल्लोपे क्ते इति अधरितं जितमित्यर्थः। मैत्र्यं संगं तृष्णा तृषा पक्षे लोभः अमृतं मोक्षः पक्षे नीरं भजीसेवायां परोक्षाउसि अनादेः स्यादेरिति एकारे द्वित्वाभावे भेजुः। आङ्सद्ऌगतौ इति धातुना आसाद्यरूपसिद्धिः। अन्ये पुरुषा विच्छिन्नतृष्णास्त्वमृतेच्छां न कुर्वंति। पादपक्षे विच्छिन्नतृष्णात्वे यथेच्छममृतं भजंतीति चित्रं ॥ २ ॥

भावार्थ—दिशाओना समूहने प्रसन्न करनारा अने हस्ती तथा म-

घरना चिन्होने धारण करनारा श्री पार्श्वनाथ प्रभुना ते चरणो नखरूपी मणिमयदर्पणना तेजरूप जळना छांटाथी तमारा तापने हरण करो. नित्य विकाशी एवां कमलोथी सरोवरनो तिरस्कार करनारा जे प्रभुना चरणोनी मैत्री प्राप्त करी कया प्राणीओ पोतानी तृष्णाने छेदी परम अमृतने नथी प्राप्त थया ? ए आश्चर्यनी वात छे. २

विशेषार्थ—आ श्लोकमां श्री पार्श्वनाथ प्रभुना चरणनुं वर्णन करेलुं छे. ग्रंथकार कहे छे के, " ते पार्श्वनाथ प्रभुना चरण तमारा तापने हरो. " तापने हरवामां जळनी जरुर छे, तेथी ग्रंथकार ते चरणना नखरूपी मणिदर्पणना तेजने जळना छांटानुं रूपक आपे छे. सरोवरना कमळो सूर्यविकाशी होवाथी रात्रेम्लानि पामनारा छे, अने आ प्रभुना चरणरूप कमळो नित्य विकाशी छे ; तेथी ते सरोवरनो तिरस्कार करनारां छे. जे प्राणीओए, प्रभुना

चरणनी मैत्री प्राप्त करेली छे, ते प्राणीओनी तृष्णा छेदायेली छे अने तेओ परम अमृत एटले मोक्षने प्राप्त थयेला छे. २

विश्वेभ्यो भूर्भुवः स्वः शतमखमुकुटश्लिष्टमुक्तामयूख—
स्नाताः पार्श्वस्य पादांबुजनखमणयो मंगलानि क्रियासुः ।
येषामुत्संगवेद्यां शुचिरुचिलहरीतांडवाडंबरायां,
संक्रामन् दुग्धसिंधोः स्मरति मुहुरसौ यामिनीकामिनीशः ॥ ३ ॥

अवचूर्णिः—पार्श्वस्य भूर्भुवः स्वः शतमुखमुकुटश्लिष्टमुक्तामयूखस्नाताः पादांबुजनखमणयो विश्वेभ्यो मंगलानि क्रियासुः । येषां शुचिरुचिलहरीतांडवाडंबरायां उत्संगवेद्यां संक्रामन् असौ यामिनीकामिनीशो दुग्धसिंधोः मुहुः स्मरति । पृथ्वीपातालस्वर्गाणां इंद्राः नृपभवनपतिदेवेंद्राः तेषां मुकुटाः तेषु श्लिष्टा लग्ना ये मुक्ताः तासां मयूखास्तेषु नखमणिषु । उत्संगवेद्यां मध्ये इत्यर्थः 'वेदी वितर्दिरजिरं' इति नाममालावचनात् वेदीशब्दः शोभार्थो वा उत्संगशब्देन मध्यं लक्षणया यथाग्नि-

माणवकः । लहर्यः कल्लोलास्तेषां तांडवानि विलासाः तेषामाडंबराणि यस्यां तस्यां । क्षीरार्णवं चिंतयति, 'स्मृत्यर्थदयेशः षष्ठी' । यामिनीकामिनीशः चंद्रः प्रासादस्य पूर्वाभिमुखत्वात् श्रीवामेयप्रतिमायाश्चंद्रकांतमयत्वात् एवमुक्तिः ॥ ३ ॥

भावार्थ—इंद्रोना मुगटनी साथे मळेला मुक्ताफलोना किरणोमां स्नान करेला श्री पार्श्वनाथप्रभुना चरणकमळना नखमणिओ आ त्रण जगतना समग्रजनोनुं मंगळ करो. जेमनी उज्ज्वल कांतिनी लहेरोना तांडवना आडंबरवाळी मध्यवेदी उपर प्रतिबिंबित थतो निशारूपी कामिनीनो पति चंद्र वारंवार दूधनासमुद्रनुं स्मरण करे छे. ३

विशेषार्थ—आ श्लोकमां ग्रंथकार श्री पार्श्वनाथप्रभुना चरणकमळना नखने आशीर्मंगलरूपे स्तवी वर्णवे छे. जे श्री पार्श्वनाथ प्रभुना चरणकमळना नखमणिओ इंद्रोना मुगटपर जडेला मुक्ताफळना किरणोमां स्नान करेला छे—अर्थात् इंद्रो आवी पोताना मस्तको नमावी तेमना चरणमां नमे

छे. ते नखमणि उपर चंद्रनुं प्रतिबिंब पडे छे, तेथी ते चंद्रने दुधना समुद्र-नुं स्मरण थाय छे. आ कहेवानो भावार्थ एवो छे के, लौकिक कथामां कहेवा-य छे के चंद्र क्षीरसागरमांथी नीकळेला चौद रत्नो मांहेलुं एक रत्न छे अने प्रभुना नखमणि दूधना जेवा उज्ज्वल छे, तेथी तेमां प्रतिबिंब रूपे पडता एवा चंद्रने पोताना उत्पत्ति स्थान रूप क्षीरसमुद्रनुं स्मरण थाय ए संभवित छे. अने तेनुं वर्णन करी कविए स्मृति अलंकार दर्शावेलो छे. आवा दिव्य नख-मणिओ सर्व जगतनुं मंगळ करवाने समर्थ थाय—ए पण निःसंदेह वार्ता छे. ३

देवः पार्श्वः शिवं वः प्रथयतु हरतां कल्मषं शर्म दत्ता
माधत्तां धाम कीर्तिं घटयतु दिशतां गौरवं वैभवं च ।
भूतस्तिष्ठन् भविष्यन् सद्गतिरपद्गतिर्दूरसंस्थःपुरस्थो

यदृज्ञानादर्शशय्यां सममधिवसति स्वेच्छया वस्तुसार्थः ॥ ४॥

अवचूर्णिः-स पार्श्वो देवोवः युष्माकं शिवं प्रथयतु कल्मषं हरतां शर्म दत्तां धाम आधत्तां कीर्त्तिं घटयतु गौरवं च पुनर्वैभवं दिशतां । भूतस्तिष्ठन् भविष्यन् सवृतिः अपवृतिः दूरसंस्थः पुरस्थो वस्तुसार्थः यद्ज्ञानादर्शशय्यां स्वेच्छया समं अधिवसति । सवृतिः पटाद्याच्छादितः अपवृतिः अनाच्छादितः अतीतानागतवर्त्तमानवर्त्ती पदार्थः क्रिया सुगमा । 'अधेःशीङःस्थासआधार' इति सूत्रेण यद्ज्ञाना-दर्शशय्यां अत्र द्वितीया ॥ ४ ॥

भावार्थ—आ जगत्ना भूत भविष्य अने वर्त्तमानकाळना बनावो तथा पदार्थोनो समूह जे आवरणवाळो होय, आवरणरहित होय, दूर रहेलो होय अथवा नजीक रहेलो होय ते सर्व जेना ज्ञानरूपी दर्पणनी शय्यामां स्वेच्छाथी साथेज वास करीने रहेलो छे, ते श्री पार्श्वनाथप्रभु तमारुं कल्याण विस्तारो, पाप हरो, सुख आपो, तेज प्रसारो, कीर्त्ति वधारो अने गौरव तथा वैभव आपो. ४

विशेषार्थ—आ श्लोकथी कविए श्री पार्श्वनाथ प्रभुनी ज्ञानलक्ष्मी वर्णवी आशीर्वचन रूप मांगल्य कहेलुं छे. श्री पार्श्वनाथना केवळ ज्ञानने दर्पणनी उपमा आपी छे. जेम दर्पणमां बधा पदार्थो देखाइ आवे छे, तेम तेमना केवळ ज्ञानरूपी दर्पणमां बधा पदार्थो देखाइ आवे छे. अर्थात् ते केवळ ज्ञानथी सर्व भूत, भविष्य अने वर्त्तमानना बनावो जोइ शकाय छे. जे वस्तु आवरणवाळी होय के आवरणरहित होय, दूर होय के नजीक होय ते बधी वस्तु केवलज्ञानी जोइ शके छे अने जाणी शके छे. आवा उत्तम केवलज्ञानधारी भगवंतनी भक्तिथी कल्याण प्राप्त थाय छे, पाप दूर थाय छे, सुख मळे छे, तेज वधे छे, सत्कीर्त्ति वधे छे, अने गौरव तथा वैभव प्राप्त थाय छे—तेथी ग्रंथकार ए उत्तम पदार्थो प्राप्त थवानी आशीष आपे छे. अने ते साथे सूचवे छे के, जेनामां केवळज्ञाननुं सामर्थ्य होय, ते प्रभु कल्याणादि वस्तुओ

आपवाने समर्थ थइ शके छे. अने एवा समर्थ श्रीपार्श्वनाथ प्रभुज छे. ४

आस्थानी मंगलानां जलधिरनवधिः शर्ममध्याः सुधायाः
पार्श्वो देवाधिदेवः प्रवितरतु चिरं शाश्वतीं स श्रियं वः ।
जिष्णुः कुंदावलेपं फणिपतिरसनाक्रोडमासाद्य सद्यः
कांतिर्यद्गात्रयष्टेर्जनयति जगतः क्षीरधाराभिशंकाम् ॥ ५ ॥

अवचूर्णिः—मंगलानामास्थानी राजधानी शर्ममध्याः सुधायाः अनवधिरमर्यादः जलधिः देवाधिदेवः स पार्श्वो वो युष्माकं चिरं शाश्वतीं श्रियं प्रवितरतु । सद्यः फणिपतिरसनाक्रोडमध्यं आसाद्य कुंदावलेपं कुंदस्य धवलपुष्पस्यावलेपं अहंकारं जिष्णुः जयनशीला यद्गात्रयष्टेः कांतिः जगतः क्षीरधाराभिशंकां जनयति । जिश्रजिन्नेव 'जेःस्नुः' इति स्नुप्रत्ययः ॥ ५ ॥

भावार्थ—मोलरना पुष्पना गर्वने जीतनारी जेमना गात्रनी उज्ज्वलकांति सर्पोनी रसनाना मध्य भागमां आवी जगतने क्षीरनी धारानी शंका

उत्पन्न करे छे, एवा मंगळोना स्थानरूप अने सुखमय अमृतना निरवधि समुद्र एवा देवाधिदेव श्री पार्श्वनाथ प्रभु तमने चिरकाल शाश्वत लक्ष्मी [मोक्षलक्ष्मी] ने आपो. ५

विशेषार्थ—आ श्लोकमां श्री पार्श्वनाथ प्रभुना शरीरनी कांतिनुं वर्णन करी मोक्षलक्ष्मीनी प्राप्ति रूप आशीर्वचननो उद्गार करवामां आव्यो छे. श्री पार्श्वनाथ प्रभुनी श्वेतकांति उपर ग्रंथकार उत्प्रेक्षा करे छे. श्री पार्श्वनाथ प्रभुनी कांति मोलरना पुष्प जे घणांज श्वेत छे, तेना गर्वने नाश करे छे. तेवी श्वेत कांति श्वेतकांतिवाळा प्रभुनी साथे रहेला सर्पनी रसनानो योग पामेली छे, तेथी ए कांतिनी झांइ एवी प्रसरे छे के, ते जोइ जगत्ना लोकोने जाणे प्रभु उपर क्षीरनी धारा थती होय, एवी शंका उत्पन्न करावे छे. आवा श्री पार्श्वनाथ प्रभु मोक्षलक्ष्मी आपवाने समर्थ छे. जे मोहलक्ष्मीने आपवाने स-

मर्थ होय ते मंगळना स्थानरूप तथा सुखना समुद्र रूप होवा जोइए, तेथी ग्रंथकार तेमने तेवा विशेषणो आपे छे के, श्री पार्श्वनाथ प्रभु मंगळोना स्थान रूप छे अने सुखमय अमृतना निरवधि सागररूप छे. ५

निश्रेणिर्मुक्तिधाम्नः स्फुरदुरुदुरितोदन्वदुत्तारसेतुः
केतुर्विघ्नोदयानां जडिमदिनपतिर्भूर्भुवः स्वः प्रदीपः ।
कुल्या कल्याणवल्ल्याः कलुषसुरसरित् पुण्यपीयूषवृष्टि-
र्दृष्टिः पार्श्वस्य तेजांस्युपनयतु सतां संहरंती तमांसि ॥६॥

अवचूर्णिः—मुक्तिधाम्नो निश्रेणिः स्फुरदुरुदुरितोदन्वदुत्तारसेतुः विघ्नोदयानां केतुः जडिमदिनपतिः भूर्भुवःस्वःप्रदीपः कल्याणवल्ल्याः कुल्या कलुषसुरसरित् पुण्यपीयूषवृष्टिः तमांसि संहरंती पार्श्वस्य दृष्टिः सतां तेजांसि उपनयतु वृद्धिं नयतु। स्फुरंति च उरूणि च स्फुरदुरूणि तानि च दुरितान्येव उदन्वान् समुद्रः तस्योत्तारः तत्र सेतुरिव सेतुः । जडिमनि जाड्ये पक्षे मूर्खत्वे दिनपतिः । कुल्या नीका ॥६॥

भावार्थ—मोक्ष रूप मेहेलनी निसरणी रूप, स्फुरणायमान एवा मोटा पाप रूप समुद्रने उतरवानी पाज (पुल) रूप, विघ्नोना उदयमां [1]ध्वजा रूप जडतामां सूर्य रूप, त्रण लोकमां दीपक रूप, कल्याण रूप लतामां नीकरूप अने पाप रूपी महा नदीमां पवित्र अमृतनी वृष्टि रूप एवी श्री पार्श्वनाथ प्रभुनी दृष्टि सत्पुरुषोने अंधकारनो नाश करी तेज आपो. ६

विशेषार्थ—आ श्लोकमां श्री पार्श्वनाथ प्रभुनी दृष्टिनो प्रभाव दर्शाव्यो छे. जे प्राणी उपर श्री पार्श्वनाथ प्रभुनी दृष्टि पडे तेने केटलो अने केवो लाभ थाय? तेने माटे ते दृष्टिने जुदां जुदां रूपक आपेलां छे. ते दृष्टि मुक्ति रूपी मेहेलनी निसरणी छे एटले जे प्राणी उपर प्रभुनी दृष्टि पडे, ते प्राणीने मोक्ष मळे छे. तेनाथी प्राणी पापरूप समुद्रने उतरी जाय छे. तेने

---

१ ध्वजा मंगळ रूप होवाथी विघ्ननो नाश करनार छे.

विघ्नो थता नथी, जडता रहेती नथी, त्रण लोकनो प्रकाश थाय छे, कल्याण-नुं पोषण थाय छे अने पाप रूप सरितामां पुण्य रूप अमृतनी वृष्टि थाय छे. ६

यज्जन्मस्नात्रपर्वण्यनवरतचलच्चामरालीमरुद्भि-
र्विक्षिप्तैरंतरीक्षे विचकिलधवलैर्दुग्धसिंधोः पयोभिः ।
आकीर्णं शीतरश्मेः क्षणमधितवपुर्निष्कलंकामवस्थां
त्रैलोक्यारब्धसेवः स हरतु दुरितं पार्श्वदेवश्चिरं वः ॥ ७ ॥

अवचूर्णिः—त्रैलोक्यारब्धसेवः स पार्श्वदेवश्चिरं वो युष्माकं दुरितं हरतु। यज्जन्मस्नात्रपर्वणि अनवरत-चलच्चामरालीमरुद्भिः अंतरीक्षे विक्षिप्तैः उत्सारितैः विचकिला मल्लिका तद्वद्धवलैः दुग्धसिंधोः पयोभि-राकीर्णं व्याप्तं शीतरश्मेर्वपुः क्षणं निष्कलंकां अवस्थां अधित धृतवत् ॥ ७ ॥

भावार्थ—जेमना जन्म स्नात्रना पर्वमां वारंवार चलायमान थयेला

चामरोनी पंक्तिना पवनोथी आकाशमां उछळेला क्षीरसागरना मल्लिकाना वृ-
क्षना जेवा धोळा जळथी व्याप्त थयेलुं चंद्रनुं शरीर क्षणवार निष्कलंक अ-
वस्थाने प्राप्त थाय छे अने त्रण लोक जेनी सेवा करे छे एवा श्री पार्श्वनाथ
प्रभु चिरकाळ तमारा पापने हरो. ७

विशेषार्थ—श्री पार्श्वनाथ प्रभुना जन्म स्नात्रना उत्सवनुं वर्णन आपी
ग्रंथकार आशीर्मंगळ करे छे. पार्श्वनाथ प्रभुना जन्म स्नात्रनो उत्सव एवो
मोटो थाय छे के, जेनी अंदर हजारो देवताओ चामर वींजे छे अने ते चा-
मरना एवा मोटा पवनो छुटे छे के, जेथी क्षीरसागरना जळ उछळीने आका-
शमां रहेला चंद्र सुधी पोहोचे छे. क्षीरसागरनुं जळ श्वेत होवाथी चंद्रनी
अंदर रहेल कलंक ढंकाइ जाय छे एटले तेथी चंद्रनी अवस्था निष्कलंक थइ
जाय छे. आवा प्रभाविक पार्श्वनाथ प्रभुनी सेवा त्रण लोक करे छे, तेथी ते

पापने दूर करवाने समर्थ छे. ७

स्पष्टं दृष्ट्वापि कष्टं वपुषि विगलितभ्रांतिसृष्ट्या स्वदृष्ट्या
काष्टक्रोडाद्विकर्षन् कमठमठशिखिम्लायितांगं भुजंगम् ।
यस्तथ्यां मुक्तिवीथीं कथयति करुणामेव देवाधिनाथ—
श्रेणीसंवाहितांघ्रिर्विघयतु घटामापदां वः स देवः ॥ ८ ॥

अवचूर्णिः—देवाधिनाथा इंद्रास्तेषां श्रेणी तया संवाहितौ सेवितौ अंघ्री यस्य स देवाधिनाथश्रेणीसंवाहितांघ्रिः स देवो वो युष्माकं आपदां घटां विघटयतु श्लथयतु विगलितभ्रांतिसृष्ट्या स्वदृष्ट्याऽवधिज्ञानेन वपुषि स्पष्टं कष्टं दृष्ट्वापि काष्टक्रोडात् काष्टमध्यात् कमठमखशिखिम्लायितांगं भुजंगं सर्पं विकर्षन् यः करुणामेव तथ्यां सत्यां मुक्तिवीथीं मुक्तिमार्गं कथयति ॥ ८ ॥

इत्यष्टौ नमस्काराः पार्श्वस्य ।

भावार्थ—जे प्रभुए भ्रांतिनी उत्पत्ति वगरनी स्वदृष्टि (अवधिज्ञान)

वळे स्पष्ट रीते पोताना शरीर उपर कष्ट जोइ काष्टनी अंदरथी सर्पने खेंची काढ्यो हतो के जे सर्पनुं अंग कमठना धूणीना अग्निथी करमाइ गयुं हतुं, जे दया भरेला मुक्तिना सत्य मार्गने कहे छे, अने जेमना चरण इंद्रोनी पंक्तिए सेवेला छे एवा ते श्री पार्श्वनाथ प्रभु तमारी आपत्तिओने नाश करो. ८

विशेषार्थ—आपत्तिने नाश करवा माटे ग्रंथकार श्री पार्श्वनाथ प्रभु-ने आशीर्वाद रूपे स्तवे छे. जे पुरुषे कोइवार बीजा कोइनी आपत्तिनो नाश कर्यो होय, ते पुरुष आपत्तिनो नाश करवाने समर्थ थाय छे. तेथी आ श्लोकमां श्री पार्श्वनाथ प्रभुनो कमठ तापसनी धूणीमां बळता एवा काष्टमांथी सर्पने उगारवानो संबंध दर्शाव्यो छे अने एवा परदुःखभंजन प्रभु बीजानी आपत्तिने दूर करी शके छे. ८

आश्चर्यमंदिरमुदारगुणाभिरामं
विश्वंभरापणवधूतिलकायमानम् ।
तेजांसि यच्छतु कुमारविहारनाम
भूमीभुजश्चलुकवंशभवस्य चैत्यम् ॥ १ ॥

अवचूर्णिः—अथ कुमारविहारस्याष्टोत्तरं शतं काव्यानि । चुलुकवंशभवस्य भूमिभुजः आश्चर्यमंदिरं उदारगुणाभिरामं विश्वंभरापणवधूतिलकायमानं कुमारविहारनाम चैत्यं तेजांसि यच्छतु । विश्वंभरा पृथ्वी सैव पणवधूः वेश्या तस्याः तिलकमिवाचरितं तिलकायमानं 'क्यङ्' इति यः आनसि अतोय आने इति मांते तिलकायमानं कुमारविहार इति नाम यस्य तत् चैत्यं प्रासादः । पृथ्व्याः पणवधूपमानं 'पुहुवी नवीनवेलरी पुरुष पुराणा थाइ' इति हेतोः संभाव्यते ॥ १ ॥

भावार्थ—आश्चर्यनुं मंदिर रूप, उदार गुणोथी मनोहर अने पृथ्वी रूपी वारांगनानुं तिलक रूप एवुं चौलुक्य वंशी महाराजा कुमारपाळनुं कुमा-

रविहार नामे चैत्य तेजने आपो. ए

विशेषार्थ—अहिंथी आ महा काव्यनी वस्तुनुं वर्णन शरु थाय छे. अने ते वस्तुने आशीर्वाद रूपे वर्णवे छे–महाराजा कुमारपाळे रचेलुं चैत्य के जे कुमारविहारना नामथी प्रख्यात छे अने ते उपरथीज आ काव्यनुं नाम पण कुमारविहार पमेलुं छे; ते चैत्य आ काव्यना वाचकोने तथा श्रोताओने तेज आपो. ते चैत्यने जोवाथी अनेक आश्चर्य उत्पन्न थाय छे, तेथी ते आश्चर्यनुं मंदिर छे. ते चैत्यना दर्शनथी अनेक जातना गुणो थाय छे, तेथी ते उदार गुणोथी मनोहर छे. मनोहर अने उंचुं एवुं ते चैत्य आ पृथ्वी रूपी स्त्रीनुं तिलक रूप छे. आवा उत्तम विशेषणोने लइने ते चैत्य तेज आपवाने समर्थ छे. ए

यस्मिन्नास्थानभाजः शशिमणिवपुषः पार्श्वनाथस्य गात्रम्

स्नात्रांभःसेकमात्रप्रणयविघटितास्तोकलोकाधिशोकम् ।
संक्रामद्भिस्तुरंगद्रुमशशिसुरभिश्रीगजैर्भित्तिचित्रैः
सौभाग्यं दुग्धसिंधोरविदितमथनोत्पातबाधस्य धत्ते ॥१०॥

अवचूर्णिः—यस्मिन् प्रासादे आस्थानभाजः शशिमणिवपुषः पार्श्वनाथस्य स्नात्रांभःसेकमात्रप्रणयविघटितास्तोकलोकाधिशोकं गात्रं भित्तिचित्रैः संक्रामद्भिः तुरंगद्रुमशशिसुरभिश्रीगजैः अविदितमथनोत्पातबाधस्य दुग्धसिंधोः सौभाग्यं धत्ते । अविदितोऽज्ञातो मथनमेव उत्पातबाधो यस्य दुग्धसिंधोः तस्य सेक एव सेकमात्रं तस्य प्रणयः संश्लेषः ॥ १० ॥

भावार्थ—जे कुमारविहार नामना जिनालयमां स्थान करीने रहेला अने चंद्रकांतमणिमय शरीरवाळा श्री पार्श्वनाथ प्रभुनुं गात्र मात्र स्नात्र जळना सिंचनथी नम्र एवा घणां लोकोना शोकने नाश करनारुं छे, तेनी अंदर अश्व, कल्पवृक्ष, चंद्र, कामधेनु, लक्ष्मी अने ऐरावतना भींतपर चित्रेलां

चित्रोना प्रतिबिंब पमवाथी मथन करवाना उत्पातनी पीमाने नहिं जाणनारा क्षीरसागरना सौभाग्यने ते धारण करे छे. १०

विशेषार्थ—कुमारविहार चैत्यमां रहेला श्री पार्श्वनाथ प्रभुनी प्रतिमा चंद्रकांतमणिमय छे ते प्रतिमाने ज्यारे स्नात्र करावे छे, त्यारे तेमांथी चंद्र-कांत मणिना झरणाओ झरे छे. जे भविप्राणी उपर ए स्नात्र जळनुं सिंचन थाय छे, ते भविप्राणी शोकथी मुक्त थइ जाय छे. ते चंद्रकांतमय प्रतिमाने ज्यारे स्नात्र कराववामां आवे छे, त्यारे ते स्नात्र जळनी अंदर मंदिरनी भीं-तो उपर चितरेला अश्व, कल्पवृक्ष, चंद्र, कामधेनु, लक्ष्मी अने ऐरावतना चित्रोना प्रतिबिंबो पमे छे. आ देखाव उपरथी कवि कल्पना करे छे के, समु-द्रना मथननी वार्त्ता लोकमां प्रसिद्ध छे. ने मथन करेला समुद्रमांथी चौद रत्नो नीकळेलां छे. ते चोद रत्नोमां अश्व, कल्पवृक्ष, चंद्र, कामधेनु, लक्ष्मी

अने ऐरावत ए रत्नो प्रख्यात छे. प्रभुना स्नात्र जळ रूप समुद्रमां प्रतिबिंबित थयेला अश्व, वगेरे रत्नो मथन करवानी पीडा वगर प्राप्त थयेला देखाय छे. तेथी आ स्नात्रजळनो क्षीरसागर पेला क्षीरसागरथी विशेष सौभाग्यवान् छे. अहिं व्यतिरेकालंकार थाय छे. १०

निर्गच्छत्कांतिवीचीनिचयधवलिताभ्यर्णसौवर्णभित्ति-
र्यस्यांतश्चंद्रकांतोपलशकलमयी पुत्रिकांभः किरंती ।
वंदारूणां त्रिलोकीप्रसृमरयशसो देवदेवस्य पादान्
शौचाचारे गलंतीललितमविकलं नक्तमाविष्करोति ॥११॥

अवचूर्णिः—यस्य अंतर्निर्गच्छत्कांतिवीचीनिचयधवलिताभ्यर्णसौवर्णभित्तिः अंभः किरंती चंद्रकांतोपलशकलमयी पुत्रिका त्रिलोकीप्रसृमरयशसो देवदेवस्य पादान् वंदारूणां जनानां शौचाचारे नक्तं रात्रौ गलंतीललितं करकललितं अविकलं आविष्करोति । आविष्पूर्वः करोतिः । ' निर्ग-

बहिरावि:प्रादुश्चतुरां ' इति सूत्रेण षत्वं ॥ ११ ॥

भावार्थ—जे कुमारविहार चैत्यनी अंदर नीकळती कांतिना तरंगोना समूहथी पासेनी सुवर्णनी भींतोने प्रकाश करती एवी चंद्रकांत मणिना कटकानी पुतळी के जेमांथी जळना झरणा नीकळे छे. ते त्रण लोकमां जेनुं यश प्रसरी रह्युं छे एवा देवाधिदेव श्री पार्श्वनाथ प्रभुना चरणने वंदना करनारा मनुष्योने सारी रीते तेमना शौचाचारने माटे पूर्ण एवी लज्जा प्रगट करे छे. ११

विशेषार्थ—कुमारविहार चैत्यनी अंदर चंद्रकांत मणिनी पुतळीओ आवेली छे. तेनी कांति पासेनी दीवालो उपर पडे छे, तेथी ते धोळी थइ गयेली छे अने तेमांथी पाणीनां—झरणां झर्या करे छे. आथी प्रभुना चरणने वंदना करवा आवेला लोकोने पोताना शौचाचारने माटे पूर्ण एवी लज्जा प्रगट करे छे. ११

पर्यंतभित्तिषु विचित्रवितानरूप-
बिंबांकितासु शशिरत्नमयीषु यत्र ।
आलेख्यकर्म शबलं लिखतो वृथैव-
संतर्जयंति खलु चित्रकरान्नियुक्ताः ॥ १२ ॥

अवचूर्णिः—यत्र विचित्रवितानरूपबिंबांकितासु शशिरत्नमयीषु पर्यंतभित्तिषु वृथैव शबलं आलेख्यकर्म लिखतः चित्रकरान् नियुक्ता अधिकारिणः खलु संतर्जयंति । पर्यंतभित्तयो बहिर्भित्तयः वितानं उल्लोचश्चंद्रोदय इति यावत् । चित्रकर्म शबलं कर्बुरं ॥ १२ ॥

भावार्थ—जे कुमारविहार चैत्यना पर्यंत भागमां चंद्रकांतमणिनी दिवालो आवेली छे के, जे विचित्र चंदरवाना रूपना प्रतिबिंबथी अंकित छे. तेनी अंदर नकामुं काबरचितरुं आलेखनुं काम करनारा चित्रकारोनो त्यां नीमाएला रक्षकपुरुषो तिरस्कार करे छे. १२

विशेषार्थ—कुमारविहार चैत्यनी अंदर आवेली दिवालो चंद्रकांतमणिनी रचेली छे, तेमां विचित्र जातना त्यां बांधेला चंदरवाना प्रतिबिंबो पडे छे, तेथी तेनी अंदर स्वाभाविक रीते चित्रकाम खडुं थाय छे. आ वखते जे चितारात्रो तेमां काबरचीतरा रंग पूरी चित्रो करता हता, तेमनो ते प्रयत्न वृथा जाणी त्यां रहेला रक्षकपुरूषो तेओनो तिरस्कार करे छे. कारण के, ज्यां विचित्र चित्रो प्रतिबिंबथी थयेलां छे, ते उपर बीजां चित्रो करवां ते वृथा छे. १२

नानाहस्तकशालिनीः क्वचिदपि क्वापि त्रिलोकीजन–
स्तुत्याकारविराजिनीः क्वचिदथ व्यालोलताडंकिनीः ।
दृष्ट्वा यत्र भवंति रत्नघटिताः पांचालिकाः प्राणिनः ।

केचिन्नाट्यविदः स्मरग्रहभृतः केचित्परे शिल्पिनः ॥१३॥

अवचूर्णिः—यत्र क्वचिदपि नानाहस्तकशालिनीः क्वापि क्वचिदपि त्रिलोकीजनस्तुत्याकार-विराजिनीः अथ क्वचिद् व्यालोलताडंकिनीः रत्नघटिताः पांचालिका दृष्ट्वा केचित्प्राणिनःनाट्यविदः केचित् स्मरग्रहभृतः परे शिल्पिनः भवंति हस्तकाः हस्तचालनानि । व्यालोलाश्च एतास्ताडंकाः कर्णभूषणानि यासां ताः । 'अतइन्स्त्रियां' भृतोतिङ्यां ताडंकिनी ॥ १३ ॥

भावार्थ—जे कुमारविहार चैत्यनी अंदर कोइ ठेकाणे नानाप्रकारना हाथना हावभावथी सुंदर, कोइ ठेकाणे त्रणलोकना मनुष्योमां स्तुति करवा योग्य आकृतिथी विराजित अने कोइ ठेकाणे कानना चपळ आभूणोवाळी रत्नोथी घडेली पुतळीओ रहेली तेओने जोइ केटलाएक प्राणीओ नाट्य शास्त्रने जाणनारा थइ जाय छे, केटलाएक कामी थइ जाय छे अने केटला-एक कारीगरो बनी जाय छे. १३

विशेषार्थ—ते कुमारविहार चैत्यनी अंदर त्रण प्रकारनी पुतळीओ गोठवेली छे, तेओने जोइने माणसो पण त्रण प्रकारना बनी जाय छे. जे पुतळीओ हाथना हावभाव करनारी छे, तेओने जोनारा नाटक कळामां प्रवीण थाय छे जे पुतळीओ सुंदर आकृतिवाळी छे, तेओने जोनारा पुरूषो कामी थइ जाय छे अने जेओ कानना चपळ आभूषणोने धारण करनारी छे, तेओने जोनारा पुरुषो कारीगर बनी जाय छे. १३

ग्राम्या दुग्धमयान् विलासिमनसः कर्पूरपूरात्मकान्
वादभ्रांतिभृतो रसस्थितिभवान् सौवर्णिका राजतान् ।
ज्योत्स्नाभिः कलधौतजां जनयतः स्वर्णस्य कुंभावलीं
स्तंभान् यत्र विकल्पयंति रभसादागंतवो जंतवः ॥ १४ ॥

अवचूर्णिः—यत्र ज्योत्स्नाभिः कलधौतजां स्वर्णस्य कुंभावलीं जनयतः स्तंभान् रभसात्

आगंतवः ग्राम्या दुग्धमयान्। विलासिमनसः कर्पूरपूरात्मकान् वादभ्रांतिभृतो धातुवादिनः रसस्थिति-भवान् पारदस्थानोत्पन्नान् सौवर्णिका राजतान् विकल्पयंति। वेगात् आगच्छंती ति आगंतवः अतुस्प्रत्यये। ग्रामे भवाः ग्राम्याः यत्प्रत्यये कर्पूरपूर आत्मा येषां ते कर्पूरपूरात्मकाः स्वरूपेके ॥ १४ ॥

भावार्थ—बाहेरथी वेगवडे आवेला लोको जे चैत्यनी अंदर सुवर्णनी कुंभावळीने (कुंभीने) चंद्रनी कांतिथी रुपानी करता एवा कलशोने जोइ जुदा जुदा तर्क करे छे. गामडीआ लोको तेमने दुधना बनेला धारे छे. विलासीहृदयवाळा रसिकपुरुषो तेमने कपूरना पूरथी बनेला माने छे. धातुवादनी भ्रांतिने धारण करनारा पुरुषो तेमने पाराना रसने स्थिर करी बनावेला जाणे छे अने सोनी लोको तेमने रुपाना बनेला माने छे. १४

विशेषार्थ—आ श्लोकथी ते चैत्यनी अंदर आवेला कलशोनुं सौंदर्य वर्णवेलुं छे. खरी रीते तो ते थांभलाओनी कुंभीओ सुवर्णनी छे, पण

विहा-
कम् ॥
१६ ॥

ते उपर चंद्रनी कांति पमवाथी तेओ एटला बधा धोळा देखाय छे के, जेमने जोनारा लोको विविध जातनी कल्पनाओ करे छे. कल्पना करनारा लोकोए जे जे कल्पना करी छे, ते तेमनी जातिने अनुसरीने करेली छे. १४

यस्मिन्नालोक्य मर्त्यैर्विकटमपि कृतं संकटं रंगमध्यं
प्रेक्षोत्का नाकनार्यो रुचिरमणिशिलापुत्रिकाणां छलेन ।
आरूढाः काश्चिदुच्चैः प्रबलरभसया मंडपं काश्चिदुच्चं
स्तंभानां प्रांतमन्याः शिखरपृथुतटीमेखलां काश्चिदुच्चाम् ॥१५॥

अवचूर्णिः—यस्मिन् विकटं विस्तीर्णमपि रंगमध्यं मर्त्यैर्मनुष्यैः संकटं संकीर्णं कृतं आलोक्य रुचिरमणिशिलापुत्रिकाणां छलेन प्रेक्षोत्काः विलोकनीयोत्कंठलाः काश्चिन्नाकनार्यः प्रबलरभसया उच्चैः स्थानं काश्चिदुच्चं मंडपं अन्याः स्तंभानां प्रांतं काश्चित् उच्चां शिखरपृथुतटीमेखलां आरूढाः संतीति गम्यं रभसाशब्द आकारांतोऽपिपुंस्त्रीलिंगत्वात् ॥ १५ ॥

ભાવાર્થ—જોવાને ઉત્સુક એવી સ્વર્ગની દેવીઓ જેની અંદર આવી તે ચૈત્યના રંગ મંડપનો મધ્ય ભાગ વિકટ છતાં પણ લોકોથી સાંકડો થયેલો જોઇ સુંદર મણિશિલાની પુતળીઓના બહાનાથી કોઇ પ્રબળ વેગવડે ઉંચા મંડપ ઉપર આરૂઢ થઇ છે. કોઇ સ્તંભોના ઉંચા પ્રાંત ભાગ ઉપર આવી ગઇ છે અને કોઇ શિખરની ઘણી વિશાળ અને ઉંચી મેખલા ઉપર ચડી ગઇ છે. ૧૫

વિશેષાર્થ—આ શ્લોકથી ગ્રંથકાર તે ચૈત્યના રંગ મંડપની અંદર ગોઠવેલી મણિશિલાની પુતળીઓને ઉત્પ્રેક્ષા અલંકારથી વર્ણવે છે. મંડપ, તેના થાંભલાઓ અને મેખલા ઉપર રહેલી તે પુતળીઓ નથી પણ તે ચૈત્યને જોવાને આવેલી દેવીઓ છે. લોકોની ભીડથી સાંકડા થયેલા તે ચૈત્યના રંગ મંડપને જોઇ તેઓ જુદે જુદે સ્થાને ચડી ગઇ છે. તે ઉપરથી તે ચૈત્યની અંદર

घणी पुतळीओ गोठवेली छे, एम बताव्युं छे. १५

साक्षेपं प्रेर्यमाणैरपि सरलपथे वैनतेयाग्रजेन
त्रस्तैर्भीष्माननेभ्यः शिखरगुरुतटीपीठकंठीरवेभ्यः ।
उद्वल्गं नीयमानः प्रसभमिह हयैरग्रतः पृष्ठतो वा
यस्योत्तुंगस्य मूर्ध्नि व्रजति न तरुणेऽप्यह्नि पूष्णः पताकी ॥१६॥

अवचूर्णिः—उत्तुंगस्य यस्य मूर्ध्नि वैनतेयाग्रजेन अरुणेन सरलपथे आकाशे साक्षेपं प्रेर्यमाणैरपि भीष्माननेभ्यः शिखरगुरुतटीपीठकंठीरवेभ्यः त्रस्तैर्हयैरिह पत्तने तरुणेऽप्यह्नि मध्याह्नेऽपि प्रसभं हयात् पृष्ठतो वाग्रतः उद्वल्गं नीयमानः पूष्णः सूर्यस्य पताकी रथः न व्रजति ॥ १६ ॥

भावार्थ—उंचा एवा जे कुमारविहार चैत्यना मस्तक उपर मध्यान्ह काळे पण सूर्यनो रथ चाली शकतो नथी. कारणके, अरुण सारथिए सरल मार्गे आक्षेपथी हांकेला अश्वो ते चैत्यना शिखरना मोटा तटना पीठ उपर

कोरीने चितरेला जयंकर मुखवाळा सिंहोथी त्रास पामता हता. अने तेथी तेओ लगामने नहिं गणी ते रथने बळात्कारे आगळ अथवा पाछळ लइ जता हता. १६

विशेषार्थ—आ काव्यमां कर्त्ताए कुमारविहार चैत्यनी उन्नति अने तेनी अंदर रचेली कारीगरी दर्शावी छे. ते कुमारविहार प्रासाद एटलो बधो उंचो छे के, सूर्यनो रथ तेनी नजीक आवे छे. मध्यान्हकाळे ज्यारे सूर्यनो रथ तेना शिखर उपर आवे छे, ते वखते त्यां करेली सिंहनी प्रतिमाओ जोइ सूर्यना रथना घोडा चमकी जाय छे, तेथी सूर्यना सारथि अरूणने ते घोडाने हांकवामां घणी मुश्केली पडे छे. आ वर्णनमां कविए अतिशयोक्ति अलंकार दर्शाव्यो छे अने ते साथे प्रस्तुत वस्तुनुं मनोरंजन वर्णन करी बताव्युं छे. १६

त्रिस्थानीसंनिवेशप्रयणसुरभिणो वल्लकीनादभाज-
स्तृष्णावेशादशेषस्वरलयघटनास्फीतगीतामृतस्य ।
उत्कर्णं व्योम्नि तिष्ठन् प्रतिपदरचनां रात्रियात्रास्वतंद्र-
श्चांद्रः कालत्रयेऽपि प्रथयति महतीं यत्रराकां कुरंगः ॥१७॥

अवचूर्णिः—गीतनृत्यवादित्रत्रयमिति त्रिस्थानी अथवा नाभिहृदयकंठत्रयं यत्र । रात्रियात्रासु त्रिस्थानी संनिवेशप्रणयसुरभिणः वल्लकीनादभाजः अशेषस्वरलयघटनास्फीतगीतामृतस्य तृष्णावेगात् प्रतिपदरचनां उत्कर्णं व्योम्नि तिष्ठन् अतंद्रश्चांद्रः कुरंगः कालत्रयेऽपि महतीं राकां प्रथयति । तृष्णावेशः आटोपः त्रयाणां स्थानानां द्रुतविलंबितमध्यरूपाणां तेषांसमाहारः त्रिस्थानी तस्याः संनिवेशो रचना तत्र प्रणय आश्लेषः तेन सुरभि मनोज्ञम् ॥ १७ ॥

भावार्थ—जे कुमार चैत्यमां रात्रिनी यात्रामां आलस वगरनो अने चंद्रनी अंदर रहेलो हरिण त्रणे काळ मोटी पूर्णिमाने दर्शावे छे. कारणके,

ते चैत्यमां त्रण स्थानना स्नेहथी मनोहर संगीतना नृत्य, गीत अने वादित्र-रूप वीणाना नादथी युक्त अने सर्व स्वरोना लयनी घटनाथी व्याप्त एवा गायन रूप अमृतनी तृष्णाना आवेशथी ते गायनना दरेक पदनी रचना सांभळवा ऊंचा कान करीने आकाशमां ऊभो रहे छे. १७

विशेषार्थ—आ श्लोकमां कवि कुमारविहार चैत्यनी उन्नतिनी साथे तेमां थती संगीत पूजानुं वर्णन करे छे. ते चैत्यमां नृत्य, गीत अने वादित्रथी मळेलुं तथा वीणाना नादथी युक्त एवुं संगीत सदा काळ थया करे छे. ते संगीतने सांभळवानी इच्छाथी चंद्रनी अंदर रहेलो मृग ते स्थळे स्थिर रहे छे एटले त्यां सदा काळ पूर्णिमानो देखाव थइ रहे छे. मृग जातिने संगीत सांभळवानो घणोज शोख होय छे. ए श्रवणेंद्रियनी आसक्तिने लइने शीकारीओना पाशमां सपडाय छे अने पोताना प्राणने पण गुमावे छे. अहिं अति-

शयोक्ति अलंकार छे. ते अलंकारथी कुमारविहार चैत्यनी उन्नति अने तेमां थती संगीत पूजानुं वर्णन करेलुं छे. १७

बिभ्राणैरक्षरालीं त्रिभुवनजनताक्षेमरक्षैकपालीं
मंत्रै विंघ्नेक्षुयंत्रैः स्नपनविधिभवैर्नित्यमाहूयमानाः ।
यातायातानि भूयः प्रथयितुमनलंभूष्णवो यत्रदेव्यो
बाह्यानां देवधाम्नां व्यधिषत वसतिं मंडपोर्ध्वांगणेषु ॥१८॥

अवचूर्णिः—यत्र त्रिभुवनजनताक्षेमरक्षैकपालीमक्षरालीं बिभ्राणैः स्नपनविधिभवैः विघ्नेक्षुयंत्रैः मंत्रैः आहूयमानाः भूयः अलंभवंतीति अलंभूष्णवः भूजेस्नुः स्नुप्रत्ययः । यातायातानि प्रथयितुं अनलंभूष्णवः देव्यः बाह्यानां देवधाम्नां मंडपोर्ध्वांगणेषु वसतिं व्यधिषत न मध्ये न बहिः किंत्वर्द्धोपचारः ॥ १८ ॥

भावार्थ—त्रण भुवनना लोकोना कुशळनी रक्षा करवामां मुख्यपाळरूप

एवी अक्षरोनी श्रेणीने धारण करनारा अने विघ्नोनो नाश करवामां शोभती पीलवाना यंत्र जेवा स्नात्र विधिना मंत्रोथी हंमेशां बोलाववामां आवेली देवीओ वारंवार गमनागमन करी शकी नहिं एटले तेओ ते चैत्यनी बाहेर आवेला देवालयोना मेरुपना उपरना आंगणांमां स्थान करीने रहेली छे. १८

विशेषार्थ—आ श्लोकथी ग्रंथकार कुमारविहार चैत्यनी अंदर थता नित्य स्नात्रविधिना महिमानुं वर्णन करे छे. प्रथम ते स्नात्र विधिना मंत्रोने माटे कहे छे के, ते मंत्रोमां रहेला अक्षरो त्रण भुवनना लोकोनी रक्षा करवाने समर्थ छे. तेम वळी ते मंत्रो सर्व प्रकारना अंतरायने दूर करवाने समर्थ छे. ए मंत्रोनी अंदर शासनदेवीओने बोलाववामां आवे छे. ते चैत्यमां स्नात्रविधि हंमेशां थवाथी ते देवीओने नित्ये आववुं पडे छे. हंमेशां जवा आववाथी ते देवीओने श्रम पडे छे, तेथी तेओ कुमारविहार चैत्यनी बाहेरना

देवालयोनी अंदर आवी वास करीने रहेली छे. कहेवानो आशय एवो छे के, ते चैत्यमा हमेशां स्नात्रविधि थया करे छे अने तेना पवित्रमंत्रोना उच्चार त्यां थया करे छे. १८

पश्यन् हाटककुंभपंक्तिमतुलां निर्वर्णयन् पीठिकाम् ।
निध्यायन् विविधा वितानवितती व्यालोकयन् पुत्रिकाः ।
यस्मिन् मध्यमपूर्वकौतुकशतैः क्षिप्तांतरात्मा चिराद्
द्वारस्थैरिव धारितः प्रविशति प्रायेण सर्वो जनः ॥ १९ ॥

अवचूर्णिः—यस्मिन् प्रासादे हाटककुंभपंक्तिं पश्यन् अतुलां पीठिकां निर्वर्णयन् विविधा वितानविततीः निध्यायन् पुत्रिका व्यालोकयन् अपूर्वकौतुकशतैः क्षिप्तांतरात्मा प्रेरितात्मा द्वारस्थैरि व धारितः प्रायेण सर्वो जनः चिरान्मध्यं प्रविशति ॥ १९ ॥

भावार्थ—जेना मध्यभागमां सुवर्णना कुंभोनी पंक्तिने जोता, अनु-

पम पीठिकाने नीरखता, विविध प्रकारना उल्लेचनी श्रेणीओने अने पुतळीओने अवलोकता सर्व माणसो अपूर्व एवा सैकमो कौतुकथी हृदयमां विक्षेप पामी जाय छे, तेथी जाणे द्वारपाळोए तेमने अटकाव्या होय, तेम प्राये करीने तेमां घणी विलंबे प्रवेश करे छे. १ए

विशेषार्थ—जेम कोइ राजद्वार वगेरेमां प्रवेश करवो होय त्यारे द्वारपालना अटकाववाथी घणी विलंबे तेमां प्रवेश थाय छे, तेम कुमारविहार चैत्यनी अंदर प्रवेश करवामां विलंब थाय छे. कारण के, तेमां प्रवेश करतां माणसो चैत्यनी केटलीएक शोभा जोवामां रोकाय छे, तेथी तेमने अंदर प्रवेश करतां घणी वार लागे छे. ते उपर कवि उत्प्रेक्षा करे छे के, चैत्यनी अंदर आवेल सुवर्णना कळशनी पंक्ति, अनुपम पीठिका, उल्लेच, अने पुतळीओनी शोभा जोवामां रोकाएलां माणसो जाणे द्वारपाळे अटकाव्यां

होय, तेम चिरकाले तेमां प्रवेश करे छे. ते उपरथी सिद्ध थयुं के, ते चैत्यनी अंदर सुवर्ण कळशनी पंक्ति, पीठिका, उल्लोच अने पुतळीओ जोवा लायक छे. १९

सर्वत्र निर्मलतमोपलबिंबितानि
स्वान्येव पुष्पबलिजूंषि वपूंषि वीक्ष्य ।
संघट्टकष्टचकिताः प्रतिपालयंतो
मध्यं चिरेण खलु यस्य विशंति मुग्धाः ॥२०॥

अवचूर्णिः—सर्वत्र निर्मलतमोपलबिंबितानि पुष्पबलिजूंषि स्वान्येव वपूंषि वीक्ष्य संघट्टकष्टचकिताः प्रतिपालयंतः मुग्धाः खलु यस्य मध्यं चिरेण प्रविशंति पुष्पाणि बलयश्च पुष्पबलयः पुष्पबलीन् जुषंतीति पुष्पबलिजूंषि जुष्धातुः क्विपिजुष् । घंटालोलान्यायेन वीक्ष्य प्रतिपालयंतः इति शतृक्त्वाप्रत्यययोः कर्म वपूंष्येव ॥ २० ॥

भावार्थ—सर्व स्थळे रहेला अति निर्मळ स्फाटिक मणिना पाषाणोनी अंदर पुष्पना बलि साथे रहेला पोतानाज शरीरने जोइ संघट्टथवाना (भीड थवाना) कष्टथी भय पामी राह जोइ उभा रहेला मुग्ध लोको ते चैत्यनी मध्यमां चिरकाले प्रवेश करे छे. २०

विशेषार्थ—ते चैत्यनी अंदर पुष्पना बलिने लइ पूजा करवा आवेला मुग्ध लोको, पोताना शरीरने अति निर्मल एवा स्फाटिक मणिमां प्रतिबिंबित थयेलां जोइ तेओ मुग्धपणाने लइने एम समजे छे के, अहिं लोकोनी भीड घणी छे, तेथी भयपामी तेओ भीड दूर थवानी राह जोइ उभा रहे छे अने ते कारणथी तेओ घणीवारे चैत्यनी अंदर दाखल थाय छे आ उपरथी एम दर्शाव्युं छे के, ते चैत्यमां निर्मल स्फाटिकमणि जड्या हता अने त्यां जिनपूजा करवाने घणा लोको आवता हता. २०

विश्वं निर्दोषषट्कं किमपि विदधतो देवदेवस्य पादा–
नाश्लिष्यन् बाह्यभित्तिप्रतिहतिवलनप्राप्तमध्यैः कराग्रैः ।
एणांकस्त्यक्तशंकः पतति मणिभुवि प्रांगणस्य क्षपायाम्
प्राप्तप्रौढिं कलंकं विघटयितुमना यत्र बिंबच्छलेन ॥ २१ ॥

अवचूर्णिः—यत्र क्षपायां निर्दोषषट्कं विश्वं विदधतो देवदेवस्य पादान् बाह्यभित्तिप्रतिह-तिवलनप्राप्तमध्यैः कराग्रैः आश्लिष्यन् प्राप्तप्रौढिं कलंकं विघटयितुमनाः दूरीकर्त्तुमनाः त्यक्तशंकः एणांकः बिंबच्छलेन प्रांगणस्य मणिभुवि पतति । काम १ क्रोध २ लोभ ३ मान ४ दंभ ५ रति ६ दोषषट्कं दोषाणां षट्कं दोषषट्कं निर्गतं दोषषट्कं यस्मात्तत् । विघटयितुं मनो यस्य स विघटयितुमनाः तुमश्चमनःकाम इति मकारलोपः ॥ २१ ॥

भावार्थ—जेना आंगणानी मणिमय भूमिमां चंद्र पोतानुं प्रौढ क-लंक दूर करवानी इच्छाथी प्रतिबिंबना मिषथी निःशंक थइने पडे छे. जे चं-

ञ्च आ जगत्ने काम क्रोधादि ब दोषथी रहित करनारा श्री देवाधिदेवना चरणने बाहेरनी दीवालोने स्पर्श करी अंदर पेठेला पोताना किरणोना अग्र ज्ञागथी आलिंगन करे ठे. २१

विशेषार्थ—" देवाधिदेव ज्ञगवंते आ जगत्ने कामक्रोधादि ब दोषथी रहित करेलुं ठे, तेथी जो तेमना चरणमां वंदना करी होयतो हुं पण कलंकना दोषथी रहित थइश " आवी इच्छाथी चंद्र ते चैत्यनी दीवालोने किरणो वमे स्पर्श करी ज्ञगवंतना चरणमां पमे ठे. चैत्यनी आंगणांनी स्फाटिकमणिमय भूमिमां चंद्रनुं प्रतिबिंब पडे ठे, ते उपरथी कविए आ उत्प्रेक्षा करेली ठे. २१

अंतर्लब्धप्रवेशैः करनिकरभरैर्भंशयन्नंधकार–
प्राग्भारं देवमूर्त्तिं बहिरपि नमतां दर्शयन् सप्रकाशम् ।

उत्तुंगे संमुखायाः प्रतिनिदधदयं यत्र रत्नाश्मभित्तेः
सौवर्णस्यांशुमाली कलयति करणिं प्रत्यहं दर्पणस्य ॥२२॥

अवचूर्णिः—यत्र उत्तुंगे अंतर्लब्धप्रवेशैः करनिकरजरैः अंधकारप्राग्भारं भ्रंशयन् बहिरपि नमतां नराणां सप्रकाशं देवमूर्त्तिं दर्शयन् संमुखायाः रत्नाश्मभित्तेरुत्संगे प्रतिनिदधत् अयं अंशुमाली सूर्यः सौवर्णस्य दर्पणस्य प्रत्यहं करणिं सादृश्यं कलयति। धाग्धातुः शतृप्रत्ययः ततः कृतद्वित्वे नोंतेचअंतोनोलुगि प्रतिनिदधत् रूपम् ॥ २२ ॥

भावार्थ—सूर्य जे उंचा चैत्यनी अंदर प्रवेश थयेला पोताना किरणोना समूहथी अंधकारना समूहने दूर करे छे, बाहेर रही नमस्कार करता एवा पुरुषोने प्रकाश सहित दर्शावे छे. अने चैत्यना आगळ सन्मुख आवेली रत्नमणिनी दीवालना मध्यमां पोतानुं प्रतिबिंब पाडे छे, तेथी ते सूर्य हंमेशां सुवर्णना दर्पणनी तुलनाने प्राप्त करे छे. २२

विशेषार्थ—आ श्लोकमां सूर्यने सुवर्णना दर्पणनी उपमा आपेली छे. जे चैत्यनी सन्मुख आवेली दीवालनी अंदर सूर्यनुं प्रतिबिंब पडे छे. ते वखते तेना किरणो तेनी अंदर पडे छे तेथी प्रभुनी मूर्त्तिने बाहेरथी नमन करतां एवा लोकोने प्रकाश मले छे. आ उपरथी कविए चैत्यनी अंदर रत्नमणिमय दीवालो छे, एम दर्शावेलुं छे. २२

वैदूर्याश्मप्रणालीमुखमकरतटैर्घ्राणपात्रैकमित्रम्
यस्मान्निर्गच्छदच्छं स्नपनविधिभवं केतकीपुष्पपाथः ।
दिग्लोलानीलभासो बहुलपरिमलाकृष्टभृंगप्रसंग—
भ्रांत्या हस्तैः किरंत्यः पुरहरिणदृशो मौलिभिः संस्पृशंति ॥२३॥

अवचूर्णिः—दिग्लोला दिक्षुचपला नीलाभासो नीलकांतीः कर्मतापन्नाः बहुलपरिमलाकृष्टभृंग

प्रसंगभ्रांत्या हस्तैः किरंत्यः क्षिपंत्यः पुरहरिणदृशो नगरस्त्रियो यस्मात्प्रासादाद्वैदूर्याश्मप्रणालीमुखमकरतटे निर्गच्छत् घ्राणपात्रैकमित्रं स्नपनविधिजवं केतकीपुष्पपाथः पानीयं मौलिभिः संस्पृशंति । नगरस्त्रियः किं केतकीपुष्पपाथः कीदृक् पुष्पपाथः निर्गच्छत् कस्मात् वैदूर्याश्मनां प्रणालीभ्यः तासां मुखानि तेषु मकरतटाः तैः तटशब्दः शोभार्थः घ्राणपात्रं नासिका क्वापि वैदूर्याश्ममयत्वात्प्रासादस्य दिग्लोलानीलभासः प्रासादविशेषणं युक्तं दिक्षु लोलाश्चपला भासो यस्य सः तस्मात् ॥ २३ ॥

भावार्थ—वैदूर्यमणिनी मघरना आकारवाळी खाळमांथी नीकळतुं स्नात्र विधिनुं केतकीना पुष्पवाळुं निर्मळजळ के सुगंधथी नासिकारूप पात्रनुं मित्ररूप हतुं. तेनी नीलकांतिओ दिशाओमां चपळ थइ प्रकाशती हती तेथी नगरनी स्त्रीओने एवी भ्रांति थती हती के, अहिं घणां सुगंधने लइने भमराओ खेंचाइ आव्या छे, तेथी तेओ पोताना हाथवडे तेने उगाळती उगाळती पोताना मस्तक वडे स्पर्श करती हती. २३

विशेषार्थ—ते चैत्यनी अंदर प्रभुने स्नान करावाना जळने नीकळवानी

ખાળ વૈદૂર્ય મણિથી રચેલી હતી અને તે ખાળના મુખ ઉપર મઘરની આકૃ-
તિ કરેલી હતી તેમાંથી સ્નાત્ર જલ જ્યારે બાહેર નિકળતું તે વખતે નગરની
સ્ત્રીઓ તે જલને મસ્તકવડે વંદન કરવા આવતી, ત્યારે વૈદૂર્ય મણિની નીલ-
કાંતિ તે જલ ઉપર પ્રસરીજતી. તેને તે સ્ત્રીઓ સુંગંધને લઇ આવેલા ભ્રમરો-
ને જાણી તેને ઉડાડવા જતી તેથી જલને ઉછાલતી હતી. ભ્રમરની કાંતિ
નીલ હોય છે, તેથી તે સ્ત્રીઓને ભ્રમ થતો હતો. અહિં ભ્રાંતિમાન્ અલંકાર
વર્ણવેલો છે. ૨૩

प्रत्यारावैः सकेकाश्चलचमरमहोमांसलं पृष्ठपीठे
बिभ्राणाश्चित्रवर्णं विविधमणिभवं कांतिवीचीकलापं।
नृत्यंतो द्वारवेदीतटभुवि कृतकं बर्हिणः प्रेक्षकाणां

नेत्राण्याक्षिप्य नित्यं विदधति सरुषं यत्र शैलूषलोकं ॥२४॥

अवचूर्णिः—यत्र पृष्ठपीठे प्रत्यारावैः सकेकाः चलचमरमहोमांसलं चित्रवर्णं विविधमणिजवं कांतिवीचीकलापं बिभ्राणाः द्वारवेदीतटभुवि कृतकं नृत्यंतः बर्हिणः प्रेक्षकाणां नेत्राणि आक्षिप्य शैलूषलोकं नाट्याचार्यलोकं नित्यं सरुषं विदधति द्वारवेदी (कोटमी) यस्य प्रासादस्य पृष्ठं मयूरः तत्प्रत्यारावाः केकाः चामराणि कलापाः ॥ २४ ॥

भावार्थ—जे चैत्यमां चलायमान एवा चामरना तेजथी पुष्ट चित्र विचित्र वर्णवाला अने जातजातना मणिनी कांतिओना समूहने पोताना पृष्ठ भाग उपर धारण करता अने द्वारनी वेदिकानी तटभूमि उपर नाचता एवा मयूरो पोताना शब्दोना प्रतिध्वनिथी प्रेक्षकोना नेत्रोने पोतानी तरफ खेंचता तेथी त्यां नाटक करनारा नटलोकोने क्रोध उत्पन्न थतो हतो. २४

विशेषार्थ—ए कुमारविहार चैत्यनी अंदर द्वारनी वेदिका उपर मयूर पक्षीओ आवीने नृत्य करे छे. अने मंदिरना मध्य भागे नट लोको नृत्य करे छे. ते नट लोकोनुं नृत्य जोवाने लोको आवेला होय छे, पण ते वखते द्वारवेदी उपर नाच करता मयूरो के जेमना पृष्ठ भाग उपर विविध जातना मणिओथी चित्र विचित्र एवी कांतिनो समूह पडे छे अने तेमना केकाध्वनिना प्रतिध्वनिओ थाय छे, एथी ते प्रेक्षकोनी दृष्टिने खेंचे छे, ए जोइ नट लोकोने रोष उत्पन्न थाय छे, कारण के, तेओना नृत्य ने जोनारा माणसोनी दृष्टि मयूरो खेंचे छे. आ कहेवानो भावार्थ एवो छे के, ते कुमारविहार चैत्यमां विविध जातना मणिओ घणां छे, तेनी द्वारवेदिका उपर मयूर पक्षीओ तथा नट लोको आवीने सदा नाट्यारंभ करे छे. २४

जालीरंध्रप्रविष्टद्युतिचयखचिताच्चंद्रकांताश्मक्लृप्ता-
दूर्ध्वस्थाद्दुग्धमुग्धं जिनशिरसि पयः पातयंश्छत्रकुंभात्
कुर्वन्नक्षत्रबिंबैरजिरमणिभुवां दिव्यपुष्पोपहारम्
यत्र व्योमस्थ एव स्नपनविधिमहो श्वेतरोचिः करोति ॥२५॥

अवचूर्णिः—यत्र अहो आश्चर्ये जालीरंध्रप्रविष्टद्युतिचयखचितात् चंद्रकांताश्मक्लृप्तात् ऊर्ध्वस्थात् छत्रकुंभात् जिनशिरसि दुग्धमुग्धं पयः पातयन् अजिरमणिभुवां नक्षत्रबिंबैर्दिव्यपुष्पोपहारं कुर्वन् व्योमस्थ एव श्वेतरोचिः स्वपनविधिं करोति । मुग्धं रम्यं अजिरमणिभुवां 'वेयुवोऽस्त्रियां' इति विकल्पेन आम् तेन भुवो भुवां' छत्रकुंभात् छत्रघटात् ॥ २५ ॥

भावार्थ—जेमां आकाशमां रहेलो चंद्र प्रभुने स्नात्रविधि करे छे. जाळीना छिद्रोमांथी प्रवेश थयेली कांतिना समूहनी साथे जडेला एवा चं-

द्रकांतमणिना उपर रहेला छत्र रूप कळशमांथी दूधना जेवुं जळ प्रभुना मस्तकपर पाडे छे. अने आंगणानी मणिमय भूमिमां पडेला ताराओना प्रतिबिंबथी दिव्य पुष्पोनो उपहार करे छे. २५

विशेषार्थ—आकाशमां रहेला चंद्रनुं प्रतिबिंब प्रभुना मस्तकपर रहेला छत्रकलशमां पडे छे. ते छत्रकलश चंद्रकांत मणिनो रचेल छे तेथी तेनी उपर चंद्रनी कांति पडवाथी ते झरे छे. ते उपर कवि उत्प्रेक्षा करे छे के, चंद्र आकाशमां रहिने प्रभुनी उपर दूधनी धाराथी स्नात्रविधि करे छे. स्नात्र विधि करवामां जेम कलश वडे जलधारा करवी जोइए अने पुष्पनो उपहार चडाववो जोइए तेम अहिं चंद्रना कीरणो जालीना छिद्रोमांथी थइने चंद्रकांतमणिना छत्र उपर पडे छे, तेथी छत्रमांथी नीकळता झरणा वडे चंद्र

छत्ररूप कलशमांथी प्रभुना मस्तक उपर दूधना जेवां जलनी धारा रेमे छे. चैत्यना आंगणामां मणि जमेला छे, तेनी अंदर ताराओना प्रतिबिंब पमवा-थी ते दिव्य पुष्पना उपहार जेवा लागे छे तेथी कविए तेने पुष्पोपहारनी उपमा आपेली छे. आ उपरथी प्रभुना मस्तकपर आवेलुं छत्र अने चैत्यना आंगणानी भूमि मणिमय छे, ए वात जणावी छे. २५

यस्मिन् वितानगतरूपकबिंबभाजः
स्तंभानुपेत्य विकटस्फटिकप्रकॢप्तान् ।
दौवारिकभ्रमवशादनुकूलयंति
मध्यप्रवेशरभसैर्नगरस्य नार्यः ॥ २६ ॥

अवचूर्णिः—यस्मिन् प्रासादे नगरस्य नार्यः मध्यप्रवेशरभसैर्वितानगतरूपकाबिंबभाजः वि-

कटस्फटिकप्रकृष्टान् स्तंभान् उपेत्य दौवारिकभ्रमवशात् अनुकूलयंति । चंद्रोदयगतरूपबिंबं भजंतीति ' भजो विण् ' प्रत्ययः अप्रयोगीदिति विण्लोपे वृद्धौ च । उपेत्य आगत्य उपपूर्वक इणज् गतौ क्त्वा क्यपि तांते च उपेत्येति रूपं । अनुकूलं कुर्वंतीति अनुकूलयंति ' णिज्बहुलं ' इति णिजि अनुकूलयंति आवर्जयंतीत्यर्थः ॥ २६ ॥

भावार्थ—जे चैत्यमां आवेला उंची जातना स्फाटिकमणिना उत्कृष्ट स्तंभोनी अंदर उल्लोचमां काढेला चित्रोना प्रतिबिंब पडे छे, ते जोइ नगरनी स्त्रीओ द्वारपाळना भ्रमने लइने चैत्य मध्ये प्रवेश करवाना वेगथी अटकाइ जाय छे अने तेने अनुकूल रीते वर्त्ते छे. २६

विशेषार्थ—ते चैत्यमां दरेक स्तंभो स्फाटिकमणिना छे. तेनी अंदर उल्लोचनी अंदर रहेला चित्रोना प्रतिबिंब पडे छे ते जोइ प्रवेश करती नगरनी स्त्रीओने तेनी उपर द्वारपाळनो भ्रम पडे छे अने तेथी तेओ अंदर प्रवे-

श करवाना वेगथी अटकाइ जाय छे अने अनुकूलरीते वर्त्ते छे. ते चैत्यनी अंदर स्फटिकमणिना स्तंभोनी अने चित्र विचित्र उल्लेचनी भारे शोभा हती, एम कविए दर्शावेलुं छे. २६

नीलाश्मभित्तिवलयप्रतिबिंबितस्य
पार्श्वप्रभोर्विहितकेतकशेखरस्य ।
शेषाप्रसूनकलनाय करं क्षिपंत्यो
ग्राम्या दिशंति किल यत्र न कस्य हास्यम् ॥२७॥

अवचूर्णिः—यत्र किल निश्चये नीलाश्मभित्तिवलयप्रतिबिंबितस्य विहितकेतकशेखरस्य पार्श्वप्रभोः शेषाप्रसूनकलनाय करं क्षिपंत्यः ग्राम्याः स्त्रियः कस्य हास्यं न दिशंति । शेषाप्रसूनकलनाय शेषाकुसुमग्रहणाय ॥ २७ ॥

भावार्थ—जेमना मस्तक उपर केतकीना पुष्पनो मुगट करेलो छे एवा श्री पार्श्वनाथ प्रभुनी प्रतिमानुं पासेनी नीलमणिनी दीवालमां प्रतिबिंब पडे छे, ते जोइ, गामडानी स्त्रीओ, प्रसादीनुं पुष्प लेवाने माटे पोताना हाथ नाखे छे, आम करती ते स्त्रीओ कोने हास्य नथी करावती ? २७

विशेषार्थ—आ श्लोकमां भ्रांतिमान् अलंकार दर्शावी ए चैत्यनी समृद्धि वर्णवेली छे. ते चैत्यमां केतकीना पुष्पना मुगटवाळी श्री पार्श्वनाथ प्रभुनी प्रतिमा छे तेनुं प्रतिबिंब नीलमणिनी दीवाल उपर पडे छे, ते जोइ दर्शन तथा पूजन करवा आवेली गामडानी स्त्रीओ भुलथी प्रभुनी प्रसादीनुं पुष्प लेवाने हाथ नाखे छे, ते हाथ दीवाल उपर अथडाय छे, ते जोइ दरेक जोनार माणसने हसवुं आवे छे. २७

यत्रावासमुपेयुषो भगवतः पार्श्वस्य पुण्याद्भुत
प्राप्यैः स्नात्रजलोर्मिभिः सकृदपि स्नाताः कुरंगीदृशः ।
काश्चित्पूर्णसमृद्धयः सतनयाः काश्चिच्चिरं काश्चन
क्षीणाशेषरुजो भवंति विलसत्सौभाग्यभाजः पराः ॥ २८ ॥

अवचूर्णिः—यत्र आवासं उपेयुषः श्रीपार्श्वस्य पुण्याद्भुतप्राप्यैः स्नात्रजलोर्मिभिः सकृदपि स्नाताः काश्चित्कुरंगीदृशः पूर्णसमृद्धयः काश्चित्सतनयाः चिरं काश्चन क्षीणाशेषरुजः प्रविलसत्सौभाग्यभाजः भवंति । उपैति इति उपेयिवान् वावेत्तेः कसु वस् क सुष्मतौ च उत्कृष्टः तस्य उपेयुषः प्राप्तस्य आवासं स्थानं उपपूर्वक इणक्गताविति धातौ उपेयाय इति उपेयिवान् तत्र कसकानाविति सूत्रेण कसुप्रत्यये द्विर्धातुरितिसूत्रेण द्वित्वे इण्इति इयादेशे समानानामिति दीर्घत्वे इवर्णस्येति एत्वे कसुष्माविति कसोरुषादेशे उपेयुषि सिद्धं ईषदपि ॥ २८ ॥

भावार्थ—जे कुमारविहार चैत्यमां वास करीने रहेला भगवान् पार्श्व-

नाथ प्रभुना स्नात्र जलना तरंगो के जे अद्भुत पुण्यथी प्राप्त करी शकाय तेवा छे, ते वडे एक वखत पण न्हाएली मृगना जेवा नेत्रवाळी स्त्रीओमां कोइ पूर्ण समृद्धिवाली थाय छे, कोइ पुत्रवती थाय छे, कोइ पोताना लांबा वखतना सर्व रोगोनो क्षय करनारी थाय छे अने कोइ सौभाग्यना विलास-ने भजनारी थाय छे. २८

विशेषार्थ—आ श्लोकथी कवि श्री पार्श्वनाथप्रभुना स्नात्रजलनो महिमा वर्णवे छे. ते कुमारविहार चैत्यनी अंदर रहेला श्री पार्श्वनाथ प्रभु-ना स्नात्रजल वडे एकजवार स्नान करनारी स्त्रीओने घणुं फळ मळे छे. ते-नाथी समृद्धि, पुत्र, आरोग्य अने सौभाग्यनी प्राप्ति थाय छे. २८

जंघालैः किरणोर्मिभिः शितिमणीनाकल्पगान् मौक्तिक—

च्छायान् मौक्तिकगुच्छकान् शितिमणिच्छायान् मुहुः कुर्वतः ।
देवाद्यत्र शशांककांतवपुषः शेषः समालंबते
शेषाद् गारुडरत्ननिर्मिततनोर्देवः पुनस्तां श्रियम् ॥ २९ ॥

अवचूर्णिः—यत्र जंघालैः किरणोर्मिभिः आकल्पगान् आभरणगान् शितिमणीन् मौक्तिकच्छायान् मुहुः मौक्तिकच्छायान् शितिमणिच्छायान् कुर्वतः शशांककांतवपुषः देवात् शेषः पुनः गारुडरत्ननिर्मिततनोः शेषात् देवः स्वां श्रियं समालंबते । श्वेतमूर्त्तेः श्रीपार्श्वात् शेषः स्वां श्रियं आश्रयति शेषस्य धवलत्वात् पुनः गारुडरत्नात्मकत्वात् शेषात् पार्श्वः स्वां श्रियं समालंबते श्रीपार्श्वस्य नीलत्वात् । जंघालैः प्रसरणशीलैः ॥ २९ ॥

भावार्थ—जे चैत्यमां वारंवार वेगवाळा पोताना किरणोना तरंगो आभूषणोमां रहेला नीलमणिओने मोतीनी कांतिवाळा करता अने मोतीओना गुच्छोने नीलमणिनी कांतिवाळा करता एवा चंद्रकांतमणिना रचे-

ला श्री पार्श्वनाथ प्रभुनी शोभाने शेषनाग धारण करे छे अने गारुडी रत्नोनी रचेली मूर्त्तिवाला शेषनागनी शोभाने श्री पार्श्वनाथप्रभु धारण करे छे. १ए

विशेषार्थ—ते कुमारविहार चैत्यमां रहेला श्री पार्श्वनाथ प्रभुनी मूर्त्ति चंद्रकांतमणिनी रचेली छे. अने तेमनी प्रतिमा उपर नीलमणिना आभूषणो रहेला छे, प्रभुनी प्रतिमाना किरणो पडवाथी नीलमणि मोतीनी कांतिवाळा थाय छे अने मोतीना गुच्छो नीलमणिनी कांतिवाळा थाय छे. एम परस्पर एकबीजानी कांति एकबीजा तरफ पडे छे. तेम वळी ते प्रभुनी उपर गारुडी रत्ननो रचेलो नाग रहेलो छे. ते नागनी शोभा चंद्रकांतमय मूर्त्तिवाळा प्रभुने प्राप्त थाय छे अने गारुडी रत्नमय मूर्त्तिवाळा नागने ते प्र-

विह।
रसतकम् ॥
॥ ३१ ॥

त्नुनी शोन्ना प्राप्त थाय छे. अहिं कविए तद्गुणालंकार दर्शाव्यो छे अने चैत्यनी महान् समृद्धि वर्णवेत्नी छे. २ए

दिक्चक्राक्रमणप्रमोदितजगच्चेतोभिराच्छोटिता-
स्तेजोभिर्बहलांशुमांसलमणिप्रालंबलंबात्मभिः ।
शेषाहेरिव देवमूर्द्धनिकृतच्छत्रस्य संदर्शनात्
यत्र स्नेहभृतोपि बिभ्राति सदा मंदां शिखां दीपकाः ॥ ३० ॥

अवचूर्णिः—यत्र देवमूर्धनि कृतच्छत्रस्य शेषाहेरिव संदर्शनात् दिक्चक्राक्रमणप्रमोदितजगच्चेतोन्निः बहुलांशुमांसलमणिप्रालंबलंबात्मन्निः तेजोन्निः आच्छोटिताः स्नेहभृतोऽपि दीपकाः सदा मंदां शिखां बिभ्रति। आच्छोटिताः आस्फालिताः। बहुला बहवः ये अंशवः किरणाः तैर्मांसलाः पुष्टा ये मणयः तेषां प्रालंबो माला ॥ ३० ॥

ભાવાર્થ—દિશાઓના સમૂહને આક્રમણ કરવાથી જગત્‌ના હૃદયને હર્ષ કરનારા અને ઘાટા કિરણોથી પુષ્ટ એવા મણિઓની માળા સાથે મળવાથી લાંબા વધેલા એવા તેજથી વ્યાપ્ત થયેલા દીવાઓ તેલથી ભરેલા છે, તથાપિ જ્યાં સદા મંદ શિખાને ધારણ કરે છે. તે જાણે પ્રભુના મસ્તકપર છત્ર કરી રહેલા શેષનાગના દર્શનથીજ હોય તેમ દેખાય છે. ૩૦

વિશેષાર્થ—આ શ્લોકથી કવિ ચૈત્યની અંદર આવેલા દીવાઓનું વર્ણન કરે છે. ચારે તરફ દિશાઓમાં વ્યાપેલા મણિઓના તેજથી વ્યાપ્ત થયેલા તે દીવાઓની અંદર પૂર્ણ રીતે તેલ ભરેલું છે, પણ ત્યાં રહેલા મણિઓના તેજને લઇને તે મંદ શિખાને ધારણ કરે છે. અર્થાત્‌ મણિઓના તેજની આગળ તે ઝાંખા દેખાય છે. તે ઉપર કવિ વળી ઉત્પ્રેક્ષા કરે છે. પાર્શ્વ·

नाथ प्रभुना मस्तकपर छत्र करी रहेला शेषनागना दर्शनथी तेओ झांखा थइ गया होय, तेम देखाय छे. ३०

आवेशं संहरंतः शशिमणिवपुषः स्तंभवेदीविटंक-
स्थालीविश्रांतिभाजः प्रतिदिशमनिशं तामसं यत्र दीपाः ।
आतन्वंतः पतंगप्रथितमुभयमप्यात्महासप्रयासं
मुंचंते वीतरागक्रमसविधवशादंजनस्नेहमैत्रीम् ॥ ३१ ॥

अवचूर्णिः—यत्र प्रतिदिशं अनिशं तामसमावेशं संहरंतः शशिमणिवपुषः स्तंभवेदी-विटंकस्थालीविश्रांतिभाजः स्तंभानां वेद्यः अजिराणि तत्र या विटंकस्थाल्यो दीपस्थानानि तत्र विश्रां-तिभाजः आत्महासप्रयासं उभयमपि पतंगप्रथितमातन्वंतः दीपाः वीतरागक्रमसविधवशात् अंजनस्ने-हमैत्रीं मुंचंते । तमसः अयं तामसस्तं । आवेशं आटोपं । पतंगः सूर्यः पक्षे पतंगः खद्योतः तमोहरणा-त् स्थालीविश्रांतिभाक्त्वेन खद्योतचरितं प्रथितं । स्तंभस्य वेद्यः कोटरूयः तासां विटंकाः स्थानानि

तत्र स्थाय्यो जाजनानि ता जजंतीति विण् । अंजनं कजलं पक्षे कलमलं स्नेहस्तैलं पक्षे स्नेहोऽनु-
रागः ॥ ३१ ॥

जावार्थ—ज्यां हंमेशा स्तंज वेदीना अग्र जागे विश्रांति पामेला चंद्रकांतमणिना दीवाओ प्रत्येक दिशाना अंधकारना आवेशने नाश करे छे अने बंने रीते पतंगे दर्शावेला पोताना हास्यना प्रयासने विस्तारे छे. ते साथे वीतराग प्रजुना चरणनी समीपने लइने काजळ तथा स्नेहनी मैत्रीने छोडी दे छे. ३१

विशेषार्थ—आ श्लोकथी ग्रंथकार ते चैत्यनी अंदर आवेला चंद्र-कांतमणिओना दीवानुं वर्णन करे छे. ते दीवाओ प्रत्येक दीशाओना अंध-कारने दूर करे छे. बंने रीते पतंगना हास्यना प्रयासने विस्तारे छे. एक रीते पतंगनो अर्थ पतंगीयुं अने बीजी रीते पतंगनो अर्थ सूर्य थाय छे. सामान्य

दीवाओ पतंगना नाशनुं कारण थाय छे, त्यारे आ दीवाओमां पतंगनो नाश थतो नथी. ते दीवाओ श्री वीतराग—पार्श्वनाथ प्रभुना चरणनी समीप रहेवाथी अंजन अने स्नेहथी रहित छे. बीजा सामान्य दीवाओमां काजळ थाय छे अने स्नेह एटले तेल जोइए छीए, त्यारे आ दीवाओथी काजळ थतुं नथी, तेमज तेमां स्नेह–तेलनी जरुर पडती नथी. ३१

अस्मिन्नास्थां स धत्तां चिरमधिमनसं यस्य साक्षाद्दिदृक्षा
स्वर्गस्वर्णाद्रिकूटस्फटिकगिरितटीरोहणांतःस्थलीषु ।
आरुह्योत्तुंगशृंगां गुरुशिखरशिखां यत्र देशांतरस्था–
नित्थं संबोधयंति प्रचलपटमयैः पाणिभिः केतुदंडाः ॥ ३२ ॥

अवचूर्णिः—अस्मिन् अधिमनसं चिरं आस्थां स धत्ताम् यस्य उत्तुंगशृंगां गुरुशिखर-

शिखां आरुह्य स्वर्गस्वर्णाद्रिकूटस्फटिकगिरितटीरोहणांतःस्थलीषु साक्षात् दिदृक्षा अस्ति यत्रेत्थं देशांतरस्थान् प्रचलपटमयैः पाणिभिः केतुदंडाः संबोधयंति द्रष्टुमिच्छा दिदृक्षा सनि द्वित्वे चाप्प्रत्यये दिदृक्षा ॥ ३१ ॥

भावार्थ—जे चैत्यने विषे आवेला ध्वजदंड ऊंचा शृंगवाळा मोटा शिखरनी शिखा उपर चडी पोताना चपळ वावटारूप हाथवडे करीने देशांतरमां रहेला लोकोने संबोधी कहे छे के, " जे माणसने स्वर्गना सुवर्णपर्वतना शिखरने स्फटिकगिरि—वैताढ्य पर्वतना तटने अने रोहणाचल पर्वतनी अंदरना स्थळोने जोवानी मनमां लांबा काळनी इच्छा होय, ते आ चैत्य उपर आस्था करो." ३१

विशेषार्थ—आ श्लोकमां ते चैत्यना ध्वजदंड उपर उत्प्रेक्षा करेली छे. ध्वजाओना वावटाने हाथनी उपमा आपेली छे. जेम कोइ माणस जोवा लायक वस्तुने बतावाने पोताना हाथनी संज्ञा करी बोलावे छे, तेम ध्वजदंड

पोताना वावटारूपी हाथनी संज्ञा करी देशांतरना लोकोने ते ऊंचा चैत्यनी ऊपर आवी सुवर्णगिरि, वैताढ्यगिरि अने रोहणगिरिनी शोभा जोवाने बोलावे छे. जाणे ते एम कहेता होय के, "जो मेरु पर्वत, वैताढ्य पर्वत, अने रोहणाचळ पर्वतने प्रत्यक्ष जोवानी तमारी इच्छा होय तो आ चैत्य ऊपर आस्था करो. अर्थात् जो तमे आ कुमारविहार चैत्यमां आवशो, तो तमने मेरु, वैताढ्य, अने रोहणगिरिनी शोभा जोवाने मळशे." अर्थात् ते चैत्य एटलुं मोटुं ऊंचुं छे. तेनो बीजो अर्थ एवो पण थाय के, जो तमे आ चैत्यनी अंदर रहेला श्री पार्श्वनाथ प्रभु ऊपर आस्था राखशो, तो तमे स्वर्गमां जवाना अधिकारी थशो. तेमज मेरु, वैताढ्य, अने रोहणगिरिमां अवतरी तमे तेने प्रत्यक्ष जोइ शकशो. ३१

यस्मिन् गांगेयकुंभव्रजवमितमहः कांडसंश्लेषदोषाद्

दिक्चक्राक्रांतिधीरैः शशिनि सहगते पीतिमानं करौघैः।
निद्रालून् केलिकीरांस्तरलजललवांश्चंद्रकांतप्रकोष्टान्
ज्योत्स्नालोलांश्चकोरान्नगरमृगदृशो वीक्ष्य रात्रिं विदंति ॥३३॥

अवचूर्णिः—यस्मिन् प्रासादे गांगेयकुंभव्रजवमितमहःकांडसंश्लेषदोषात् दिक्चक्राक्रांतिधीरैः करौघैः पीतिमानं गते सति शशिनि केलिकीरान् निद्रालून् चंद्रकांतप्रकोष्टान् तरलजललवान् ज्योत्स्नालोलान् चकोरान् वीक्ष्य नगरमृगदृशः रात्रिं विदंति। वमितानि उद्गीर्णानि महांसि तेषां कांडं समूहः तस्याश्लेषः तस्य दोषात् ॥ ३३ ॥

ज्ञावार्थ—जे चैत्यमां रात्रे सुवर्णना [कलशोना समूहे बाहेर काढेला तेजना जथ्थानी साथे मळवाना दोषथी दिशाओना चक्रपर प्रसरेला धीर किरणोना समूहथी चंड उपर पीळाश थइ जवाथी नगरनी स्त्रीओने दिवसनो च्रम पडे छे, तेथी तेओ, पोताना क्रीडा करवाना शुकपक्षीओने निद्रा

करता जोइने, चंद्रकांत मणिना ओटलामांथी जळना बिंदुओने टपकता जोइने अने चकोरपक्षीओने चंद्रनीकांति तरफ चपल थयेला जोइने रात्रि पडी गइ एम जाणे छे ३३

विशेषार्थ—ते कुमारविहार चैत्यनी उपर सुवर्णना कलशो एटला बधा आवेला छे के तेमनी कांतिना किरणो पडवाथी चंद्र पीळो थइ जाय छे. एटले नगरनी स्त्रीओने सदा दिवसनोज भ्रम पडे छे. ज्यारे पोताना घरमां राखेला शुकपक्षीओ निद्रा लेवा मांडे छे, चंद्रकांतमणिना ओटलामांथी जलनां टीपाओ टपकवा मांडे अने चकोर पक्षीओ चंद्रनीकांति तरफ चपल थवा मांडे, त्यारे तेओना जाणवामां आवे छे के, ' आ दिवस नथी, पण रात्रि पडी छे.' आ उपरथी ते चैत्यना शिखरो घणां उंचा छे अने ते उपर सुवर्णना कलशो घणा छे, ए वात सिद्ध करी छे. ३३

श्रुत्वा श्रुत्वा वहद्भिः पुलकबहलितां गात्रयष्टिं समाजै-
र्लोकानां वर्ण्यमानां गुरुविभवजितस्वर्णसौभाग्यलेखाम् ।
द्रष्टुं स्वां रूपलक्ष्मीं स्तबकितकुतुकोत्ताननेत्रैकपेयां
प्रातः प्रातर्यदंतः प्रतिफलति बहिर्दर्पणोद्भासिभित्तेः ॥ ३४ ॥

अवचूर्णिः—पुलकबहलितां गात्रयष्टिं वहद्भिः लोकानां समाजैः वर्ण्यमानां श्रुत्वा श्रुत्वा गुरुविभवजितस्वर्गसौभाग्यरेखां स्तबकितकुतुकोत्ताननेत्रैकपेयां स्वां रूपलक्ष्मीं द्रष्टुं बहिर्दर्पणोद्भासिभित्तेः अंतर्मध्ये प्रातःप्रातः यच्चैत्यं प्रतिफलति । अन्योऽपि नरः लोकैर्वर्ण्यमानं स्वं रूपं द्रष्टुं दर्पणं विलोकयति समाजः समूहः । पुलकेन रोमांचेन बहलितां पुष्टां ॥ ३४ ॥

भावार्थ—जे कुमारविहार चैत्य दरेक सवारे पोतानी बाहेर रहेल दर्पणथी प्रकाशित एवी भींतनी अंदर पोताना रूपनी लक्ष्मी—शोभा जोवाने प्रतिबिंबित थाय छे. जे रूपलक्ष्मी उत्पन्न थयेला कौतुकथी उंचां करे-

लां नेत्रोवडे पान करवा योग्य छे, मोटा वैज्ञवथी सुवर्णना सौज्ञाग्यनी लेखाने जीतनारी छे अने सांज्ञळी सांज्ञळीने शरीर उपर पुलकावळीने धारण करनारा लोकोए वर्णन करेली छे. ३४

विशेषार्थ—ते कुमारविहार चैत्यनी बाहेर रहेली दीवालोमां दर्पणो जमेला छे. तेनी अंदर ते चैत्यनुं प्रतिबिंब पमे छे. ते उपर कवि उत्प्रेक्षा करे छे के, ते चैत्य ते दर्पणनी दीवालोमां पोताना रूपनी शोज्ञा जुवे छे. ते शोज्ञा अति कौतुक जरेलां नेत्रोथी जोवा लायक छे अने तेनो वैज्ञव एटलोबघो छे के, जे सुवर्णना सौज्ञाग्यनी लेखाने जीती ले छे. तेमज ए शोज्ञाने सांज्ञळी शरीर उपर रोमांच धारण करी लोकोनां टोळांओ तेनुं वर्णन करे छे. ३४

पापीयान् प्रत्यहं ते गुरुशिखरशिरः संस्पृशाम्यग्रपादैः ।

सूर्यग्रावस्फुलिंगैर्यदपि विनमतस्त्रासमासादयामि ।
तन्मे सर्वं विसोढुं प्रभवति भगवान् विश्वलोकैकबंधु-
र्यत्रैवं तिग्मभानुर्जिनमनुनयते बिंबितः प्रांगणोर्व्याम् ॥ ३५ ॥

अवचूर्णिः—ते तव गुरुशिखरशिरः अग्रपादैः पादाग्रैः प्रत्यहं पापीयान् अहं संस्पृशामि । यदपि विनमतः नरस्य सूर्यग्रावस्फुलिंगैस्त्रासमासादयामि तत् मम सर्वं विश्वलोकैकबंधुर्भगवान् विसोढुं प्रभवति एवं अनेन प्रकारेण यत्र प्रांगणोर्व्यां बिंबितः तिग्मभानुः जिनं अनुनयते । प्रभवति समर्थो भवति ॥ ३५ ॥

भावार्थ—" अति पापी एवो हुं हंमेशां तमारा मोटा शिखरना मस्तकने मारा अग्रपाद (आगळना किरणो) थी स्पर्श करुं छुं अने तमने नमस्कार करनार मनुष्यने सूर्यकांतमणिना तणखाथी त्रास आपुं छुं. एवा मारा सर्व अपराधने सहन करवाने विश्वलोकना बंधु एवा जिन भगवान्

समर्थ थाय बे." आ प्रमाणे सूर्य जे चैत्यना आंगणानी नूमिमां प्रतिबिंबित थइने प्रनुनी प्रार्थना करे बे.' ३५

विशेषार्थ—ते कुमारविहार चैत्यनी आंगणानी नूमिमां सूर्यनुं प्रतिबिंब पमे छे, ते उपर कवि उत्प्रेक्षा करे बे. ते सूर्य प्रनुने विनंति करे बे के, " हे स्वामी, हुं मारा किरणरूपी चरणथी हंमेशां तमारा मंदिरनां शिखरनो स्पर्श करुं बुं. तेम वळी तमारा चैत्यनी अंदर रहेला सूर्यकांतमणिमांथी मारा स्पर्शने लइने तणखा नीकळे बे, तेथी अंदर दर्शन करवा आवेला लोकोने त्रास आपुं छुं. ए मारा अपराधोने आप क्षमा करो छो. कारण के आप विश्वजनना बंधु बो." आ उपरथी ते चैत्यना आगणामां सूर्यनुं प्रतिबिंब पमे तेवा मणिओ बे अने अंदरना नागमां सूर्यकांतमणिओ जमेला बे, ए वात सिद्ध थाय बे. ३५

श्रीमान् देवाधिदेवस्त्रिजगदभयभूर्विश्वविश्वैकमित्रम्-
यत्रास्ते तत्र दौस्थ्यं किमिदमसुमतामाधितो व्याधितो वा ।
इत्युग्रं हंतुमंतश्चररिपुनिकरं पापपाथोधिसेतून्
प्रत्यूहव्यूहकेतून् वहति यदनिशं स्कंधबंधेषु दंडान् ॥ ३६ ॥

अवचूर्णिः—यत्र श्रीमान् त्रिजगदभयभूः विश्वविश्वैकमित्रं देवाधिदेवः आस्ते तत्र असुमतां आधितो वा-अथवा व्याधितः इदं किं दौस्थ्यमस्ति इति हेतोः कारणात् यच्चैत्यं उग्रं अंतश्चररिपुनिकरं हंतुं अनिशं स्कंधबंधेषु पापपाथोधिसेतून् प्रत्यूहव्यूहकेतून् दंडान् वहति ॥ ३६ ॥

भावार्थ—जे चैत्य स्कंधना बंधनी अंदर हंमेशा दांडाने धारण करे छे. ते पापरूपी समुद्रना सेतुरूप अने विघ्नोना समूहना धूम्रकेतु रूप एवा दांडाओ अंदरना उग्र शत्रु कामक्रोधादिकना समूहने हणवाने दंडरूप छे.

कारणके, त्रण जगत्‌ने अजय आपवाना स्थानरूप अने विश्वना सर्व जनना मित्ररूप एवा श्रीमान् देवाधिदेव ज्यां बीराजे छे, त्यां प्राणीओने आधि के व्याधिथी नठारी स्थिति केम थाय? आथी ते अंदरना शत्रुओने हणवाने दंड धारण करे छे. ३६

विशेषार्थ—ते चैत्यना स्कंधना बंधनी अंदर दांडा रहेला छे. ते उपर कवि उत्प्रेक्षाथी तर्क करे छे के, ते दांडाओ अंतरना कामक्रोधादि शत्रुओने हणवाना दंड छे, कारणके, जे चैत्यमां सर्व विश्वजनोना मित्र अने जगत्‌ने अजय आपनार श्री देवाधिदेव पार्श्वनाथ प्रभु रहेला छे, त्यां आवनारा प्राणीओने आधि तथा व्याधिथी नठारी स्थिति न थाय एटले आधि—मननी पीडा अने व्याधि—शरीरनी पीडा करनारा उग्र एवा कामक्रोधादिक शत्रुओने शिक्षा करवाने त्यां दंड राखेला छे, अर्थात् ते चैत्यमां

भावनाराओने अंदरना कामक्रोधादिक शत्रुओ पीडता नथी. ३६

चंचच्चंद्रोदयाढ्यं सवृषमुनिगणं चारुचित्रं सकुंभं
भास्वत्ताराभिरामं समकरमिथुनं दीप्तसिंहं सकेतुम् ।
स्वर्वर्त्मोल्लासिताशं सगुरुकविबुधं मंगलोद्बोधहेतुः
किं वा दृष्टांतमुच्चैः सतुलमनुकरोत्यंबरस्य श्रियं यत् ॥ ३७ ॥

अवचूर्णिः—चंचच्चंद्रोदयाढ्यं सवृषमुनिगणं चारुचित्रं सकुंभं भास्वत्ताराभिरामं समकरमिथुनं दीप्तसिंहं सकेतुं स्वर्वर्त्मोल्लासिताशं सगुरुकविबुधं मंगलोद्बोधहेतुः सतुलं यच्चैत्यं उच्चैरंबरस्य दृष्टांतं वा अथवा श्रियं अनुकरोति । अथवा यच्चैत्यं अंबरस्य आकाशस्य श्रियं किंवा पुनरर्थे अदृष्टं पापं तस्य अंतो यस्मात् । पक्षे अदृष्टः अंतः प्रांतो यस्य तत् । चंद्रोदयो वितानं पक्षे चंद्रस्य उदयः । वृषः पुण्यं । मुनयः सप्तर्षयः । चित्राणि पक्षे नक्षत्रं । कुंभो घटविशेषः । तारा दृशः अंबरे । मकरः मत्स्यमिथुनं । स्वर्गवर्त्म स्वर्गदंडः तद्वदुल्लासितौ अंसौ प्रासादस्कंधौ । तुला तोलनयंत्रं । पक्षे वृषकुंभम-

करमिथुनसिंहतुलाराशयः । गुरुकविबुधमंगला ग्रहाः ॥ ३७ ॥

भावार्थ—जे कुमारविहार चैत्य आकाशनी शोभाने धारण करे छे. आकाश चळकता एवा चंद्रना उदयथी व्याप्त छे, तो आ चैत्य चंदरवाना उदयथी युक्त छे. आकाशमां सवृष एटले वर्ष राशि सहित मुनिगण एटले सात ऋषिओना ताराओ छे, तो आ चैत्यमां सवृष एटले धर्मसहित मुनिओना गण देववंदन करवाने आवे छे. आकाशमां चारु एटले सुंदर चित्रा नक्षत्र छे, तो ते चैत्यमां सारां सारां चित्रो छे. आकाशमां कुंभराशि छे, तो ते चैत्य कुंभ—कलशवाळुं छे. आकाश प्रकाशमान एवा ताराओथी सुंदर छे, तो ते चैत्य प्रकाशमान तारावडे सुंदर छे. आकाश मकरराशि अने मिथुन राशिथी युक्त छे, तो ते चैत्यमां मघरनी आकृतिवाळां चित्रोनां जोडलां छे. आकाशमां सिंह राशि प्रदीप्त छे, तो ते चैत्यमां सिंहनी प्रतिमा प्र-

दीप्त छे. आकाश केतुना ताराथी युक्त छे, तो ते चैत्य केतु—ध्वजाथी युक्त छे. आकाशमां स्वर्गना मार्गथी दिशाओ उल्लासित थयेली छे, तो ते चैत्य पोतानी उंचाइथी स्वर्गना मार्गने उल्लासित करी दिशाओने प्रकाशित करे छे अथवा तेनी आराधना करनारने ते स्वर्गनो मार्ग मेळववानी आशा उल्लासित करावे छे. आकाश गुरु, कवि एटले शुक्र अने बुधना ताराथी युक्त छे, तो आ चैत्य गुरुओ कविओ अने बुधजनोथी युक्त छे. आकाश मंगळ ग्रहना प्रकाशनुं कारण छे, तो आ चैत्य मंगलिक कार्योना प्रकाशनुं कारण छे. आकाशमां तुलाराशि छे, तो आ चैत्य तुलासहित (तुलाना चित्रे युक्त) छे—एवी रीते सतुल—समान दृष्टांतरूप आ चैत्य आकाशनी लक्ष्मीने उंचे प्रकारे अनुसरे छे. ३७

विशेषार्थ—कविए आ श्लोकथी चैत्यने आकाशनी साथे सरखाव्युं

छे. भावार्थनी अंदरज विशेषार्थ आवी जाय छे, एटले तेनो जुदो विशेषार्थ लखवानी जरुर नथी. ३७

उन्मीलद्दृष्टितेजःशमितमनसिजं विष्टपारब्धसेवं
देवं प्राप्योरगेंद्रस्फुटमणिकिरणश्रेणिधौतोत्तमांगम् ।
अंबां बिभ्रत्कुमारव्यतिकरसुभगां सिंहपृष्ठाधिरूढां
शोभां धत्ते हिमाद्रेर्यदिह शिखरभूकोटिलीढांबरस्य ॥३८॥

अवचूर्णिः—उन्मीलदृष्टितेजःशमितमनसिजं विष्टपारब्धसेवं उरगेंद्रस्फुटमणिकिरणश्रेणिधौतोत्तमांगं देवं प्राप्य कुमारव्यतिकरसुभगां सिंहपृष्ठाधिरूढां अंबां बिभ्रत् यच्चैत्यं इह पृथिव्यां शिखरभूकोटिलीढांबरस्य हिमाद्रेः शोभां धत्ते । उन्मीलंती विकसंती या दृष्टिः तया शमितो मनसिजो येन स तं । अंबां अंबिकां पक्षे पार्वतीं । शिखरस्य भूः तस्याः कोटिः अग्रभागः तयालीढं आश्लिष्टं अंबरं येन तत् ॥ ३८ ॥

ज्ञावार्थ—जे उघाडेली दृष्टिना तेजथी कामदेवने शमावनार छे, त्रण जगत्ना लोकोए जेनी सेवा करेली छे अने सर्पोना इंद्रोना स्फुट एवा मणिओना किरणोनी पंक्तिथी जेमनुं मस्तक उज्ज्वल छे एवा देवने प्राप्त करीने अने कुमारोना व्यतिकरथी सुंदर तथा सिंहना पृष्ठ उपर आरूढ थयेला अंबिकाने धारण करीने जे कुमारविहार चैत्य पोताना शिखरोनी ज्ञूमिनी कोटीथी आकाशने स्पर्श करनारा एवा हिमालय पर्वतनी शोज्ञाने धारण करे छे. ३८

विशेषार्थ—आ श्लोकमां बे अर्थ रहेला छे. एक पक्षे श्री पार्श्वनाथ प्रज्ञुनो अर्थ थाय छे अने बीजे हिमालयने पक्षे शंकरनो अर्थ थाय छे. ज्यारे आ चैत्य हिमालयनी शोज्ञाने धारण करे छे त्यारे हिमालयनी अंदर जे रहेल छे, ते आ चैत्यनी अंदर आववुं जोइए. हिमालयमां शंकर अने पा-

र्वती बंने रहे छे, एम लौकिकमां कहेवाय छे, तो आ चैत्यमां पण शिव रूपे पार्श्वनाथ देव तथा अंबिका रहेछे. शंकरे पोतानी दृष्टिना तेजथी कामदेवने जेम बाल्यो छे, तेम पार्श्वनाथ प्रभुए पण दिव्य ज्ञान दृष्टिथी कामदेवने शमावेलो छे. जेम जगत्‌ना मिथ्यात्वी लोको शंकर देवनी सेवा करे छे, तेम सर्व जगत्‌ना समकिती लोको श्री पार्श्वनाथ प्रभुनी सेवा करे छे. शंकरने सर्पना आभूषणो होवाथी तेना मणिना किरणोनी श्रेणीथी तेनुं उत्तमांग उज्वल छे, तेवी रीते पार्श्वनाथ प्रभुना मस्तक उपर सर्प होवाथी तेमनुं मस्तक पण तेवी रीते उज्वल छे. शंकरनी पासे सिंह उपर बेठेली अंबिका देवी पोताना कुमार एटले कार्त्तिकेय स्वामी पुत्रवडे युक्त छे, तेम पार्श्वनाथ प्रभुनी पासे तेमनी अंबिका नामे शासनदेवी कुमारोना व्यतिकरथी सुंदर छे. आथी ते चैत्य हिमालय पर्वनी शोभाने प्राप्त थयेलुं छे. ३८

धारानुकारिधवलाश्ममयूखपातै-
र्धारागृहं तदिदमित्यवधार्य यत्र ।
कौसुंभचीनवसनाः सुदृशो बहिःस्था
व्याख्याविलासदनश्रियमापिबंति ॥ ३९ ॥

अवचूर्णिः—धारानुसारिधवलाश्ममयूखपातैः तत् इदं धारागृहं इत्यवधार्य यत्र कौसुंभचीनवसनाः स्त्रियः बहिरेव स्थिताः व्याख्याविलाससदनं आपिबंति पश्यंतीत्यर्थः ॥ ३९ ॥

भावार्थ—जे चैत्यमां धाराने अनुसरनारा धवलमणिना किरणो पडवाथी ' आ धारागृह (फुवारानुं गृह) छे, एम धारीने कसुंबी चीनाइ वस्त्रने धारण करनारी स्त्रीओ बाहेर एकठी थइने उभी रहे छे, तेथी तेओ व्याख्यान शाळानी शोभाने धारण करे छे. ३९

विशेषार्थ—आ श्लोकथी कवि धवलमणि—स्फटिकमणिनी शोभानुं वर्णन करे छे. ते चैत्यमां जमेला धवलमणिना किरणो एवी रीते पमे छे के, तेमने जोइ त्यां दर्शन करवाने आवती स्त्रीओ तेने फुवारानुं गृहजाणी उन्नी रहे छे. कारणके तेमणे चीनाइ कसुंबी वस्त्रो पेहेरेलां छे, जो तेओनी उपर फुवाराना धाराना छांटा पमे तो तेओना रंगने हानि थाय. आथी फुवाराना भ्रमथी तेओ चैत्यनी बाहेर एकठी थइ उन्नी रहे छे ते जाणे व्याख्यान शालामां एकठी थयेली होय तेवी ते देखाय छे. ३ए

त्रातस्त्रातव्यमेतत्त्रिभुवनमपि ते किंतु तीव्रैर्महोभि–
र्नित्यं संतप्यमाने झटिति मयि कृपां नाथ कर्त्तुं यतेथाः ।
एवं देवं प्रवक्तुं तरणिमणिमयीर्दीपयन् धूपपात्री–

यस्याभ्यर्णेषु भानुर्भ्रमति वसुभरैः पूरयन् कोशदेशान् ॥४०॥

अवचूर्णिः—हेनाथ त्रातः ते तव एतत् त्रिभुवनमपि त्रातव्यं किंतु तीव्रैः महोभिः नित्यं संतप्यमाने मयि झटिति कृपां कर्त्तु यतेथाः एवं अनेन प्रकारेण देवं भवक्तुं यस्य अभ्यर्णेषु तरणिमणिमयीः धूपपात्रीः दीपयन् वसुभरैः कोशदेशान् पूरयन् भानुर्भ्रमति । कोशदेशान् निधिदेशान् पक्षे पद्मकोशदेशान् ॥ ४० ॥

भावार्थ—"हे नाथ हे रक्षक, तमारे आ त्रण भुवननी रक्षा करवी जोइए, तो हुं हंमेशां तीव्र एवा तेजथी संताप पामुं छुं, तेथी तमारे मारी उपर कृपा करवाने यत्न करवो जोइए." आ प्रमाणे श्री पार्श्वनाथ प्रभुने कहेवाने सूर्य जे चैत्यनी नजीकमां सूर्यकांतमणिओना धूपीआने प्रदीप्त करतो भम्या करे छे. अने पोताना वसु—किरणोना समूहथी कोशना भागोने पूरे छे. ४०

विशेषार्थ—ते उंचा चैत्य उपर आवेला सूर्य उपर कवि उत्प्रेक्षा करे

छे. सूर्य प्रभुने विनंति करवाने चैत्यना उच्च प्रदेशमां नजीक आवे छे. ते एवी विनंती करे छे के, "हे स्वामी, तमे आ त्रण भुवननुं संतापमांथी रक्षण करो छो, त्यारे मारुं पण तमारे रक्षण करवुं जोइए, कारण के, हुं हंमेशा मारा पोताना तीव्र तेजथी संताप पामु छुं." आवी प्रार्थना करवाने सूर्य ते चैत्यनी नजीक भम्या करे छे. प्रभुनी पासे सूर्यकांतमणिना धूपिआ छे. ते धूपिआ उपर सूर्यना किरणो पडवाथी तेमांथी विशेषकांति निकळे छे. वळी ते पोताना वसु—किरणोना समूहथी चैत्यना कोश भागने पूरे छे. अहिं एवो पण अर्थ थाय के, जेम कोइ माणस पोतानुं कार्य करवाने बीजा माणसने द्रव्य आपे छे, तेम सूर्य संताप दूर करवानुं पोतानुं कार्य सिद्ध करवाने कोश एटले खजानो तेमां वसु एटले द्रव्य पूरे छे. वसुनो अर्थ किरण अने द्रव्य बंने थाय छे. ४०

प्रेक्षामंडपमूर्द्धगां शिखरगां दंडोर्ध्वगां कूटगां
दृष्ट्वा बिंवगतां तले मणिशिले स्वर्णस्य कुंभावलीम् ।
स्नानांभःकलशान् बहिर्विनिहितान् पश्यन् जरन् यामिको
मुग्धश्चौरभिया निषेधति जनान् यत्रादृतो भ्राम्यतः ॥४१॥

अवचूर्णिः—यत्र प्रेक्षामंडपमूर्द्धगां शिखरगां दंडोर्ध्वगां कूटगां स्वर्णस्य कुंभावलीं मणिशिलातले बिंबगतां दृष्ट्वा बहिर्विनिहितान् स्नानांभःकलशान् पश्यन् मुग्धो जरन् आदृतः यामिकः भ्राम्यतो जनान् चौरभयान्निषेधति ॥ ४१ ॥

भावार्थ—प्रेक्षामंडपना मस्तक उपर, शिखरनी टोच उपर, दंडना उपरना भाग उपर, अने कूट उपर रहेला सुवर्णना कलशोनी श्रेणीना प्रतिबिंबो मणिमय शिलावाळा तळीयानी अंदर पडेला जोइ बाहेर मुकेला स्ना-

न जलना कलशोने जोतो एवो वृद्ध अने मुग्ध एवो पेहेरेगीर चोरना जय
थी त्यां फरता एवा लोकोने आदरथी अटकावतो हतो. ४१

विशेषार्थ—ते चैत्यनी अंदर प्रेक्षामंरूप, शिखर, दंरू अने कूट उपर
रहेला सुवर्णना कलशोना मणिमय जमीन उपर प्रतिबिंब परे छे, ते प्रति-
बिंबोने जोइ त्यां रहेनारो वृद्ध चोकीदार तेने न्हावाना कळश धारे छे. ते-
थी ' रखेने ते चोराइ जाय ' एवुं जाणीने त्यां हरता फरता लोकोने अट-
कावे छे. आ उपरथी ए चैत्यनी सुवर्णना कलशनी समृद्धिनुं कविए वर्णन
करेलुं छे. ४१

स्तंभेषु केतकदलग्रथितेषु हंत
भारो महान् कथममीषु निवेशितोऽयम् ।

इत्थं सविस्मयमनस्तरलानि यत्र
व्याख्यागृहं शिशुकुलानि विलोकयंति ॥ ४२ ॥

अवचूर्णिः—यत्र केतकदलग्रथितेषु अमीषु स्तंभेषु अयं महान् भारः कथं निवेशितः इत्थं प्रकारेण सविस्मयमनस्तरलानि शिशुकुलानि व्याख्यागृहं विलोकयंति। व्याख्यागृहं व्याख्यास्थानं ॥ ४२ ॥

भावार्थ—" केतकीना पत्रोथी गुंथेला आ स्तंभोनी उपर आवो मोटो भार केम मुक्यो छे. " एम विस्मय पामेला मनथी चपल एवा बालकोनां टोलांओ ज्यां व्याख्यानगृहनुं अवलोकन करे छे. ४२

विशेषार्थ—ते चैत्यमां व्याख्यानगृहनी अंदर आवेला स्तंभो उपर केतकीना पत्रो गुंथेलां छे, ते जोइ नाना बालको विस्मय पामी विचार करे छे के, " आ स्तंभोनी उपर आटलो मोटो भार केम मुकेलो हशे ? " आ

वर्णनथी कविए चैत्यना स्तंभोनी अद्भुत कारीगरी दर्शावी छे. ४२

क्रामत्युग्रानवाप्य ध्वजपटपटलोद्भूतवाताभिघातान्
दिक्चक्रं चक्रवाले द्युमणिमणिभुवां जातवेदःकणानाम् ।
दुर्वर्णस्तंभरोचिः प्रचयपरिचयश्वेतितोष्णांशुमूर्त्तेर्
यस्योर्ध्वं चंद्रतारानिकरपरिकरा व्योमलक्ष्मीर्दिवापि ॥ ४३ ॥

अवचूर्णिः—दुर्वर्णस्तंभरोचिःप्रचयपरिचयश्वेतितोष्णांशुमूर्त्तेः यस्योर्ध्वं द्युमणिमणिभुवां दिवापि उग्रान् ध्वजपटपटलोद्भूतवाताभिघातान्अवाप्य दिक्चक्रं क्रामति जातवेदःकणानां चक्रवाले समूहे सति ऊर्ध्वं चंद्रतारानिकरपरिकरा व्योमलक्ष्मीः दिवाप्यस्ति । क्रामति वाप्नुवाने । जातवेदःकणानां अग्निकणानां ॥ ४३ ॥

भावार्थ—जे चैत्यनी अंदर आवेला सूर्यकांतमणिओमांथी थयेला अग्निना तणखाओनो समूह ध्वजाओना वावटाना समूहथी उत्पन्न थयेला

पवनना उग्र अभिघातने प्राप्त करी दिशाओना समूहमां व्याप्त थवाथी रुपाना स्तंभोनी कांतिना समूहना परिचयथी सूर्यनी मूर्त्तिने श्वेत करनारा जे चैत्यनी उपर आकाशनी लक्ष्मी दिवसे पण चंद्र तथा ताराओना समूहवाळी देखाय छे. ४३

विशेषार्थ—ते चैत्यनी अंदर सूर्यकांतमणिओनी रचना घणी छे, तेथी दिवसे सूर्यनो उदय थतां ते सूर्यकांतमणिमांथी अग्निना तणखा झरे छे. तेओ ध्वजाना वावटाओना पवनथी उग्रथइ दिशाओमां व्यापी जाय छे, अने सूर्यनी मूर्त्ति रुपेरी स्तंभनी कांति साथे मळवाथी श्वेत थइ जाय छे, एटले आकाशमां चंद्र तथा ताराओनी शोभा देखाय छे, ते उपरथी कवि कल्पना करे छे, के, दिवसे पण आकाशनी लक्ष्मी चंद्र तथा तारावाळी देखाय छे. ४३

अत्रास्ते देवराजः खलु मम न ततो राजराजस्य धर्त्तुं
लक्ष्मीः स्वास्मिन्निशांते समुचितमखिलस्वर्गिवर्गार्च्यपादः ।
इत्यौचित्यार्चनीयत्रिभुवनजनतामौलिरत्नं कुबेर-
श्चिक्षेपाक्षेपमुच्चैर्महसि निजनिधीन् यत्र कुंभच्छलेन ॥ ४४॥

अवचूर्णिः—अत्र प्रासादे खलु निश्चयेन अखिलस्वर्गिवर्गार्च्यपादः देवराजः आस्ते । ततो मम स्वस्मिन् निशांते गृहे राजराजस्य लक्ष्मीं धर्त्तुं न समुचितं न योग्यं इति औचित्यार्चनीयत्रिभुवनजनतामौलिरत्नं कुबेरः आक्षेपं यथा स्यात्तथा उच्चैर्महसि यत्र प्रासादे निजनिधीन् कुंभच्छलेन चिक्षेप । देवराज इंद्रः पक्षे जिनः । औचित्येन विवेकेन । अर्चनीयः पूजनीयः । त्रि० जगत्त्रयजनसमूहस्य मौलिःमस्तकं तस्य रत्नानि यस्यकुबेरस्य । अखिलाः संपूर्णा ये स्वर्गिणो देवाः तेषां समूहः तेन अर्च्यौ पूज्यौ पादौ यस्य देवराजस्य ॥ ४४ ॥

भावार्थ—“ सर्व देवताओना वर्गने पूजवा योग्य छे चरण जेना एवो

इंद्र अहिं रहे छे, माटे राजाओना राजा रूप एवा मारे मारा घरमां लक्ष्मी राखवी योग्य नथी " आवुं विचारी योग्यताथी पूजवा योग्य एवा त्रण भुवनना लोकोनो मुगटमणि रूप कुबेरे ऊंचा तेजवाला एवा जे चैत्यनी अंदर कलशना मिषथी पोताना निधिओनी स्थापणा मुकेली छे. ४४

विशेषार्थ—जेम कोइ मोटा राजाना राज्यमां रहेनारो घणों धनाढ्य माणस पोतानी लक्ष्मीनी थापण बीजाने त्यां मुके छे, तेम कुबेरे पोताना नव निधाननी थापण आ कुमारविहार चैत्यमां मुकेली छे. कुबेरे विचार कर्यो के, " समर्थ एवा देवताना राजाना राज्यमां रहीने मारे मारा घरनी अंदर मारी अतुल लक्ष्मी राखवी न जोइए. " आवुं विचारी तेणे पोतानी लक्ष्मीना निधान चैत्यमां आवेला सुवर्ण कलशनां मिषथी मुकेला छे. कहेवानो आशय एवो छे के, ए कलशनी महान् समृद्धिथी कुमारविहार चैत्य घणुं

सुशोभित छे. ४४

शोणग्रावांशुजालैः क्रमकमलतले यावकश्रीर्ललाट-
प्रांते सिंदूररेखा मसृणघुसृणभूरंगभागेऽगरागः ।
कौसुंभी चीनपट्टे द्युतिरधरदले हारि तांबूलमित्थं
यस्मिन् वैधव्यभाजोप्यविधववनितामंडनाः पौरनार्यः ॥४५॥

अवचूर्णिः—यस्मिन् शोणग्रावांशुजालैः क्रमकमलतले यावकश्रीः ललाटप्रांते सिंदूररेखा अंगभागे मसृणघुसृणभूः अंगरागः चीनपट्टे कौसुंभी द्युतिः अधरतले हारि तांबूलं इत्थं अनेन प्रकारेण वैधव्यभाजोऽपि पौरनार्यः अविधववनितामंडना भवंतीत्यध्याहार्यं । शोणरक्ता ये ग्रावाणः प्रस्तराः तेषां अंशुजालैः । यावकः अलक्तकः । मसृणं सुकुमालं। चीनपट्टे चीनदेशीयविशेषधवलवस्त्रे ॥ ४५ ॥

भावार्थ—जे चैत्यनी अंदर आवेली नगरनी विधवा स्त्रीओ सौभा-

ग्यवतीना जेवां आभूषणोने धारण करनारी देखाय छे. पद्मराग मणिओना किरणोना जालथी तेमना चरणतल उपर अलतानी शोभा थाय छे, ललाट उपर सिंदूरनी रेखा पडे छे, घणां केशरना रंगना रागथी अंगराग थाय छे, चीनाइ वस्त्र उपर कसुंबी रंग पडे छे अने अधर उपर मनोहर तांबूल देखाय छे. ४५

विशेषार्थ—ते चैत्यमां विधवाओ दर्शन करवाने आवे छे, ते सधवाना जेवी देखाय छे. कारणके, तेनी अंदर पद्मराग मणिओना किरणो पडवाथी ते विधवाओना शरीर उपर सौभाग्यना आभूषणो थइ जाय छे. विधवा स्त्रीओने पगमां अलतानो रंग, ललाट उपर सिंदूरनी पील, शरीरे अंगराग, ओढवा कसुंबी वस्त्र अने तांबूल होता नथी, पण आ चैत्यमां जडेला पद्मरागमणिने लइने विधवाओना शरीर उपर सौभाग्यना चिन्हो देखाय छे.

पद्मरागमणिना राता किरणो पमवाथी तेमना चरणमां अलताना जेवो दे-
खाव थाय छे, ललाट उपर सिंदुरनी रेखा पमे छे, अंग उपर केशरीआ रं-
गनो अंगराग थाय छे, चीनाइ वस्त्र उपर कसुंबी कांति पमे छे अने अधर
दल उपर मनोहर तांबूलनी शोना देखाय छे. ४५

पुष्पं यस्मिन् कनककमलान्यंशुकं चीनवासः–
स्नानस्यांभः कुसुमरजसो दीपिकारत्नरोचिः ।
आकल्पश्रीर्विविधमणयो रक्षकाः क्षेत्रपाला
धूपक्षोदो मृगमदकणाः पूजकाः क्ष्माभुजश्च ॥ ४६ ॥

अवचूर्णिः—यस्मिन् पुष्पं कनककमलानि अंशुकं मस्तावाद् धौतवस्त्रं चीनवासः स्नानस्य अंनः कुसुमजरजः दीपिकारत्नरो चिः आकल्पश्रीर्विविधमण यः रक्षकाः क्षेत्रपालाः धूपक्षोदो मृगमद-

कणाः चपुनः पूजकाः क्ष्मान्नुजो राजानो वर्त्तते इत्यध्याहारः । आकल्पः आन्नरणं । मृगमदः कस्तूरी ॥ ४६ ॥

न्नावार्थ—जे चैत्यनी अंदर सुवर्ण कमलना पुष्पो छे, चीनाइ वस्त्रो छे, स्नाननुं जल पुष्परज छे, रत्नोनी कांतिरूप दीवीओ छे, विविध जातना मणिओ पोशाकनी आंगीनी शोन्ना छे, क्षेत्रपालो तेना रक्षको छे, कस्तूरीना कण ते धूपनुं चूर्ण छे अने राजाओ तेना पूजको छे. ४६

विशेषार्थ—आ श्लोकथी कवि कुमारविहार चैत्यनी साधन सामग्री वर्णवे छे. चैत्यनी अंदर पुष्प, वस्त्र, स्नात्रजल, दीपिकाओ, पोशाक (आंगी) रक्षको, धूप अने पूजको होवा जोइए तो आ चैत्यने विषे सुवर्ण कमलरूप पुष्प, चीनाइ वस्त्रो, स्नात्रजलरूप पुष्परज, रत्नोनी कांतिरूप दीपिका, विविध जातना मणिरूप आंगी, क्षेत्रपालरूप रक्षको, कस्तूरीरूप धूप अने राजाओरूप

पूजको हता. ते उपरथी चैत्यनी विशेष समृद्धि दर्शावी छे. ४६

निर्मोकान् मन्यमानाः सरभसमनसः संहरंते मयूराः
कीराः कर्षंति पाकप्रणयपरिणमद्दाडिमीबीजबुद्ध्या ।
ज्योत्स्नाभ्रांत्या चकोराः प्रतिनिशमनिशं चंचुभिर्विक्षिपंते
मुक्तादामावचूलान् विविधमणिगृहद्वारदेशेषु यस्मिन् ॥ ४७ ॥

अवचूर्णिः—यस्मिन् विविधमणिगृहद्वारदेशेषु मुक्तादामावचूलान् निर्मोकान् सर्पकंचुकान् मन्यमानाः सरभसमनसो मयूराः संहरंते । कीराः पाकप्रणयपरिणमद्दाडिमीबीजबुद्ध्या मुक्तादामावचूलान् कर्षंति । चकोराः प्रतिनिशं प्रतिरात्रिं अनिशं ज्योत्स्नाभ्रांत्या चंचुभिः विक्षिपंति । सरभस० इति सर्वेषां विशेषणं । मुक्तादामावचूलान् मौक्तिकगुच्छकान । पाकस्य प्रणयः संश्लेषः तेन परिणमंति-पुष्टानि यानि दाडिमीबीजानि ॥ ४७ ॥

भावार्थ—चैत्यनी अंदर विविध जातना मणिमय गृहना द्वार उपर

लटकावेला मोतीओनी मालाओनी झुलोने हंमेशां मयूरपक्षीओ सर्पनी कांचली मानी मनमां आवेश लावी तेनो संहार करे छे, शुकपक्षिओ पाके-ला दाडमीमना बीजनी बुद्धिथी तेने खेंचे छे अने चकोर पक्षीओ प्रत्येक रात्रे चंद्रनी कांतिनी भ्रांतिथी तेपर पोतानी चांचुथी तेने उछाले छे. ४१

विशेषार्थ—ते चैत्यनी अंदर मणिमय गृहना द्वारनी उपर मोतीनी मालानी झुलो लटकावेली छे. ते झुलो धोळी होवाथी त्यां रहेला मोर, पोपट अने चकोर पक्षीओने तेने विषे जुदो जुदो संभ्रम थाय छे. मोर पक्षी-ओ तेने सर्पनी कांचली मानी तेपर प्रहार करवा जाय छे, शुकपक्षीओ दा-डिमना दाणानी भ्रांतिथी तेओने खेंचवा जाय छे अने चकोरपक्षीओ चांद-नीनी भ्रांतिथी तेनीपर चांचो नांखवा जाय छे. आ उपरथी 'ते चैत्यनी अं-दर मोतिओनी समृद्धि घणी छे,' एम बताव्युं छे. अहिं भ्रांतिमान् अलंकार

थाय छे. ४७

यस्मिन्नारब्धनीडान् द्युमणिमणिशिलापुत्रिकाः पाणिपद्म-
प्रांतोन्मुक्तैः स्फुलिंगैर्नवकनकमयीर्गोलिकास्तर्जयद्भिः ।
यातायातानि मध्ये किमपि विदधतस्त्रासयंत्यः शुकानाम्
पोतान्निर्व्याजशांतं मुनिनिकरमपि प्रत्यहं हासयंति ॥ ४८ ॥

अवचूर्णिः—यस्मिन् मध्ये नवकनकमयीः गोलिकाः तर्जयद्भिः पाणिपद्मप्रांतोन्मुक्तैः स्फुलिंगैः आरब्धनीडान् किमपि यातायातानि विदधतः शुकानां पोतान् त्रासयंत्यः द्युमणिमणिशिलापुत्रिकाः निर्व्याजशांतमपि मुनिनिकरं प्रत्यहं हासयंति । किमपि कथमपि । निर्व्याजं गतच्छद्म शांतं उपशांतं मुनिनिकरविशेषणम् ॥ ४८ ॥

भावार्थ—जे चैत्यनी अंदर सूर्यकांतमणिनी शिलाओनी पुतळीओ

પોતાના હસ્તકમલના અગ્રભાગમાંથી નીકળતા તણખાઓ કે જેઓ નવીન સુવર્ણની ગોળીઓને તિરસ્કાર કરનારા અર્થાત્ તેનાથી પણ વધારે સુંદર દેખાતા–તેવા તણખાઓથી ત્યાં માળા બાંધીને રહેલા અને તેમની વચ્ચે ગમનાગમન કરતા એવા શુકપક્ષીઓના બચ્ચાંઓને ત્રાસ આપે છે, તે સૂર્યકાંતમણિની પુતળીઓ અને સ્વાભાવિક રીતે શાંત એવા મુનિઓના સમૂહને પણ દરરોજ હસાવે છે. ૪૮

વિશેષાર્થ—તે ચૈત્યની અંદર સૂર્યકાંતમણિની પુતળીઓ આવેલી છે, જ્યારે સૂર્યનો ઉદય થાય છે, એટલે તે પુતળીઓમાંથી સુવર્ણની ગોળીઓથી પણ વધારે સુંદર એવા તણખાઓ પડે છે, તેથી ત્યાં માળાકરીને રહેલા શુકપક્ષીઓના બચ્ચાંઓ તેનાથી ત્રાસ પામે છે. તે જોઇ શાંત એવા પણ મુનિઓને હસવું આવે છે. ૪૮

દ્વેષોન્મેષં વહદ્ભિર્દ્વિષતિ સુહૃદિ ચ પ્રેમસીમાનમન્યૈ–

दैवैः कार्यं किमेभिस्तुलितजनपदाचारसंस्कारविस्रैः ।
देवः सेव्योऽयमेकः समसुहृदहितः प्राप्तसंसारपारो
यस्येत्थं केतुदंडः कथयति जगते किंकिणीनां निनादैः ॥ ४९ ॥

अवचूर्णिः—द्विषति द्वेषोन्मेषं उन्मेषः प्राकट्यं चपुनः सुहृदि प्रेमसीमानं वहद्भिः तुलितजनपदाचारसंस्कारविस्रैः अन्यैः एभिः दैवैः किं कार्यं अस्ति । समसुहृदहितः प्राप्तसंसारपारः अयं एको देवः सेव्यः इत्थं यस्य केतुदंडः किंकिणीनां निनादैः जगते कथयति । तुलितः कृतः जनपदा ग्राम्याः तेषां आचारः संस्कारश्च तैः विस्राः दुर्गंधाः तैः ॥ ४९ ॥

भावार्थ—जेनो ध्वजदंड घंटडीओना नादथी जगत्‌ने कहे छे के, मित्र अने शत्रु जेने समान छे अने जे संसारना पारने पामेल छे, ते आ एकज देव सेव्य छे, बीजा आ देवो शा कामना छे. कारणके, बीजा देवो

शत्रुमां द्वेषभाव अने मित्रमां प्रेमभाव धारण करे छे अने वळी तेओ देश तथा लोकाचारना संस्कार प्रमाणे वर्त्ती मलिन थयेला छे. ४ए

विशेषार्थ—ते चैत्यनी उपर उंचो ध्वजदंड छे. अने तेमां रहेली घंटडीओना नाद थाय छे. ते नाद उपर कवि उत्प्रेक्षा करे छे के, ते ध्वजदंड पोतानी घंटडीओना नादथी लोकोने कहे छे के, " आ चैत्यनी अंदर रहेला एकज देव तमारे सेव्य छे. कारणके, ते मित्र तथा शत्रुमां समभावथी वर्त्तनार अने संसारना पारने पामेला छे. बीजा देवताओ तमारे शुं कामना छे अर्थात् बीजा देवताओ सेववा योग्य नथी कारण के, ते देश तथा लोकोना आचार तथा संस्कारोथी मलिन थइ गयेला छे तेमज तेओ शत्रु उपर द्वेष अने मित्र उपर प्रेमने धारण करनारा छे." कहेवानो आशय एवो छे के, आ जगत्मां शत्रु तथा मित्र उपर समान रीते वर्त्तनार अरिहंत देव एकज

सेववा योग्य छे, बीजा राग तथा द्वेषने धारण करनारा मिथ्यात्वी देवो सेववा योग्य नथी. ते देवाधिदेव श्री पार्श्वनाथ प्रभु आ कुमारविहार चैत्यमां बीराजे छे. ४९

यत्राभ्यर्णे कृतवसतयो गीतवादित्रनृत्य–
प्रेक्षाक्षिप्ताः प्रथमवयसः पौरविप्रादिवध्वः ।
कर्मक्रुद्धश्वसुरगृहिणीवाग्भिरुच्चावचाभि
र्माद्यन्मन्युग्लपितमनसोऽप्यापतंत्येव भूयः ॥ ५० ॥

अवचूर्णिः—यत्र अभ्यर्णे कृतवसतयः गीतवादित्रनृत्यप्रेक्षाक्षिप्ताः उच्चावचाभिः कर्मक्रुद्धश्वसुरगृहिणीवाग्भिः माद्यन्मन्युग्लपितमनसोऽपि प्रथमवयसः पौरविप्रादिवध्वः भूय आपतंति । एवं कर्मणा क्रुद्धाः याः श्वसुरगृहिण्यः 'सासू' इतिलोकप्रसिद्धाः तासां वाग्भिः माद्यन् मन्युः क्रोधः

तेन ग्लपितं सविषादं मनो यासां ताः । पौरविप्रादिपदमिति साभिप्रायं यतः विप्रादिवध्वः सरोषाः स्युः ॥ ५० ॥

भावार्थ—जे चैत्यनी नजीक वास करीने रहेनारी ते नगरना ब्राह्मण वगेरेनी प्रथम वयनी वधूओ तेमां थतां गीत, वादित्र अने नृत्यने जोवामां आक्षिप्त थाय छे, तेथी कामनी अंदर क्रोध पामेली सासूओनी उंची नीची वाणीओथी तेमनां मन उत्पन्न थयेला शोकथी ग्लान थयेलां होय छे, ते छतां पण तेओ पाछी फरीथी ते जोवाने आवे छे. ५०

विशेषार्थ—कुमारविहार चैत्यमां हंमेशां नृत्य, गीत अने वादित्रोनो अखेडो मच्यो रहे छे, ते विषे कवि युक्तिथी वर्णन करे छे. ते चैत्यनी पमोशमां नगरना ब्राह्मण वगेरेनी प्रथम वयनी वधूओ रहे छे. तेओ ते नृत्य, गीत अने वादित्रोने जोवामां एवी तल्लीन बनी रहे छे, के तेओ तेथी पोता-

ना घरना कामकाज चुके छे. आथी तेमनी सासूओ गुस्सो करी तेमने कठोर वाणी कहे छे. जे सांभळी ते वधूओना मनमां ग्लानि आवे छे, तथापि तेओ पाछी फरीवार ते जोवाने आव्या वगर रहेती नथी. कहेवानो आशय एवो छे के, ते चैत्यमां नृत्य, गीत अने वाजीत्रोनी क्रिया एवी मजेनी थाय छे के, जेने माटे तेना परोशनी वधूओ पोतानी सासूना कटु वचनो सांभळे छे, ते छतां तेनो दरकार करती नथी. ५०

प्राप्यांस्त्रीन्नैस्तपोभिर्भवशतविहितैर्देवलोकोपभोगान्
श्रद्धालूनां जिनांघ्रिस्तुतिरतमनसां मर्त्यभावेऽपि कर्त्तुम् ।
आरूढान् व्योमपीठीं हठहरणकृते संपदां स्वर्गजानाम्
बाहुस्तंभानिवोर्ध्वान् वहति यदलघूनंसदेशेषु दंडान् ॥ ५१ ॥

अवचूर्णिः—मर्त्यभवेऽपि मनुष्यत्वेऽपि जिनांघ्रिस्तुतिरतमनसां श्रद्धालूनां भवशतविहितैः तीव्रैः तपोभिः प्राप्यान् देवलोकोपभोगान् कर्त्तुं यच्चैत्यं अंसदेशेषु स्वर्गजनानां संपदां हठहरणकृते बाहुस्तंभानिव व्योमपीठीं आरूढान् ऊर्ध्वान् अलघून् दंडान् वहति । अंसदेशेषु शिखरेषु ॥ ५१ ॥

भावार्थ—जे चैत्य पोताना अंस—उपरना भागमां मोटा दंडने धारण करे छे, ते जाणे सैकडो भवे करेला तीव्र तपथी पामवा योग्य एवा देव लोकना उपभोगने जिनभगवंतना चरणनी स्तुति करवामां तत्पर हृदयवाला श्रद्धालु पुरुषोने मनुष्य पणामां पण प्राप्त कराववा स्वर्गनी संपत्तिओनुं बलात्कारे हरण करवाने आकाश पीठ उपर आरुढ थयेला उंचा बाहुस्तंभ होय तेवा ते देखाय छे. ५१

विशेषार्थ—जेम कोइ माणस बीजानी संपत्ति बलात्कारे हरवाने खं-

भा उपर दंड लइ तैयार थाय छे, तेम आ चैत्यना उपरना भागमां आवेला दंड उपर कवि तेवीज उत्प्रेक्षा करे छे. ते चैत्यनी उपर उंचा रहेला दंडो जाणे प्रभुना चरणनी स्तुति करनारा भाविक भक्तोने माटे स्वर्गनी संपत्तिनुं बलात्कारे हरण करवाने उंचा बाहुस्तंभ होय तेवा देखाय छे. देवलोकना उपभोग सैकडो भवे करेला तीव्रतपथी पामवा योग्य छे, तेवा उपभोग मनुष्यपणामां मेलववाने माटे बलात्कार करवानी जरुर छे. कहेवानो आशय एवो छे के, ते चैत्ये पोतानी अंदर बिराजमान एवा पार्श्वनाथ प्रभुना चरणनी स्तुति करनारा मनुष्योने माटे स्वर्गनी संपत्तिना उपभोगनुं बलात्कारे हरण करवा पोताना खंभा उपर दंड राखी हाथ उंचा करेला छे. ५१

कंप्राणां वातघातैर्महदपि हरितां चक्रवालं समंता–

दाक्रामत्यक्रमेण प्रवरमरकतस्तंभधाम्नां प्रताने ।
कृच्छ्रादाकृष्य चंद्रं तृणकवलतृषा द्वारवेदीं प्रपन्न–
स्त्रस्यन् कंठीरवेभ्यः प्रथयति सुदृशां यत्र हास्यं कुरंगः ॥५२॥

अवचूर्णिः—यत्र वातघातैर्महदपि हरितां चक्रवालं समंतादक्रमेण आक्रामति प्रवरमरकतस्तंभधाम्नां प्रताने तृणकवलतृषा कृच्छ्राच्चंद्रं आकृष्य द्वारवेदीं प्रपन्नः कंठीरवेभ्यः त्रस्यन् कुरंगः सुदृशां हास्यं प्रथयति । कंप्राणां कंपनशीलानां । मरकत० नीलमणिस्तंभरुचीनां समूहे । हरितां नीलतृणानां चक्रवालं समूहं आक्रामति व्याप्नुवति सति । तृणकवलतृषाहरितग्रासतृषया तृतीया । प्रतिबिंबच्छलेन चंद्रं आकृष्य द्वाराजिरं प्राप्तः । कंठीरवेभ्यः सिंहेभ्यः त्रस्यन् । कुरंगो मृगः ॥५२॥

भावार्थ—वायुना आघातथी कंपायमान थयेली दिशाओना मोटा समूहने श्रेष्ठ एवा मरकतमणिना स्तंभना तेजनो समूह चारे तरफ क्रमवि-

ના આક્રાંત થવાથી ચંદ્રની અંદર રહેલો મૃગ ઘાસના કોળીયા લેવાની તૃ-
ષ્ણાથી ચંદ્રને મુસ્કેલીથી ખેંચી દ્વારવેદી ઉપર આવે છે, પણ ત્યાં રહેલા સિં-
હોની પ્રતિમાથી ત્રાસ પામે છે, તેથી જ્યાં સ્ત્રીઓને હાસ્ય ઉત્પન્ન કરે છે. ૯૨

વિશેષાર્થ—આ શ્લોકમાં ગ્રંથકાર એક નવીજ કલ્પના કરે છે. એ ચૈ-
ત્યની અંદર મરકતમણિઓ એટલાબધા જડેલા છે, કે, તેઓનું તેજ પવનના
આઘાતથી કંપાયમાન લાગતી એવી દિશાઓમાં ચારે તરફ પ્રસરે છે. મરકતમણિ
લીલા હોવાથી ચંદ્રની અંદર રહેલ મૃગ તેને ઘાસ ધારીને ખાવાની તૃષ્ણાથી
ચંદ્રને ખેંચી ત્યાં જાય છે, પણ તે સ્થળે રહેલી સિંહની પ્રતિમાંથી તે મૃગ
ત્રાસ પામે છે, આ દેખાવ જોઇ ત્યાં આવેલી સ્ત્રીઓને હાસ્ય ઉત્પન્ન થાય છે.
આ ઉપરથી તે ચૈત્ય ચંદ્રના મંડલ સુધી ઉંચું છે અને તેની અંદર મરકતમણિ-
ઓ ઘણા છે એમ દર્શાવ્યું છે. ૯૨

आकीर्णां स्वर्णकुंभैः शशिमणिशिखरोद्गीर्णरोचिःस्त्रवंतीं–
र्व्यालोक्य व्योमगंगामिव कनकपयोजन्मराजीविभूषाम् ।
स्थित्वा स्थित्वा व्रजद्भिर्जलकनकधिया सप्तिभिर्नीयमानो
यन्मूर्ध्नि स्थानलीलां रचयति तरणेर्दीर्घकालं पताकी ॥ ५३ ॥

अवचूर्णिः—यन्मूर्ध्नि स्वर्णकुंभैः आकीर्णां शशिमणिशिखरोद्गीर्णरोचिःस्त्रवंतीं कनकपयोजन्मराजीविभूषां व्योमगंगामिव व्यालोक्य जलकनकधिया स्थित्वा स्थित्वा व्रजद्भिः सप्तभिः नीयमानः तरणेः सूर्यस्य पताकी रथः दीर्घकालं स्थानलीलां कथयति । आकीर्णां व्याप्तां । चंद्रकांतशिखरादुद्गीर्णा निर्गता या रोचिषः कांत्यः ता एव स्त्रवंती नदी तां। कलशानां कमलोपमानं कांतेर्जलोपमानं । सप्तयस्तुरगाः ॥ ५३ ॥

भावार्थ—सुवर्णना कमलोनी श्रेणीरूप आभूषणवाली जाणे आकाश गंगा होय तेवी सुवर्णना कुंभोथी व्याप्त एवी चंद्रकांतमणिओना अग्रभाग-

मांथी नीकळती कांतिरूप मणिओनी नदीने जोइ जेना घोमाओ जलकनकनी बुद्धिथी उन्ना रहेता जाय बे. तेवा घोमाओए वहन करेलो सूर्यनो रथ जे चैत्यना मस्तक उपर लांबा वखत सुधी स्थानने लीला रचे बे अर्थात् घणो काल उन्नो रहे बे. ५३

विशेषार्थ—ते चैत्यनी उपर सूर्यनो रथ ज्यारे आवे बे, त्यारे ते स्थले ते घणीवार उन्नो रहे बे, कारणके, तेना शिखर उपर सुवर्णना कलशो घणा बे, अने तेमां चंद्रकांतमणिओमांथी कांतिना प्रवाह ऊर्या करे बे, एटले ते देखाव सुवर्णना कमलवाली आकाश गंगाना जेवो थाय छे. ते जोइ सूर्यना रथना घोडाओ जलनी बुद्धिथी उन्ना रही जाय छे एटले ते रथ ते स्थले लांबोकाल टकी रहे बे. आथी पण चैत्यनी अति उन्नति दर्शावी बे. ५३

गंधाकृष्टालिजालैस्त्रिदशपातिशिरःशेखरस्त्रस्तदाम-
स्तोमैरभ्यार्चितं ते पदकमलमहं नाथ नित्यं दिदृक्षुः ।
एणः किं त्वेष वैरी त्रसति हरिकुलाङ्कद्रपीठीनिषण्णा-
दित्येवं यत्र देवं प्रणिगदति शशी बिंबितो द्वारवेद्याम् ॥ ५४ ॥

अवचूर्णिः—हे नाथ गंधाकृष्टालिजालैः त्रिदशपतिशिरःशेखरस्त्रस्तदामस्तोमैः अभ्यर्चितं ते तव पदकमलं अहं नित्यं दिदृक्षुरस्मि किंतु एषवैरी एणः भद्रपीठीनिषण्णात् हरिकुलात् त्रसति यत्र द्वारवेद्यां बिंबितः शशी देवं इत्येवं प्रणिगदति ब्रवीतीत्यर्थः । त्रसैव् भये । विभ्रासभ्रास्भ्रमक्रमत्रसीति सूत्रेण वा श्ये त्रसति इति रूपं । भद्रपीठी सिंहासनं तत्र निषण्णादुपविष्टात् हरिकुलात् सिंहसमूहात् ॥ ५४ ॥

भावार्थ—जे कुमारविहार चैत्यनी द्वारवेदिकामां प्रतिबिंबित थयेलो चंद्र ते पार्श्वनाथ प्रभुने प्रार्थना करे छे के, " हेनाथ, सुगंधथी आकर्षण थ-

येला चमराओना जालवाला इंद्रोना मस्तकोना शेखर–मुगटमांथी खरीपडे-
ला पुष्पमालाना समूहोथी पूजाएला तमारा चरणकमलने जोवानी हुं नित्ये
इच्छा राखुं छुं, परंतु, आ मारो वैरी मृग तमारा भद्र पीठ उपर बेठेला सिं-
हनी प्रतिमाथी त्रास पामे छे. ५४

विशेषार्थ—ते चैत्यनी द्वारवेदिकामां पडेला चंद्रना प्रतिबिंब उपर ग्रंथकार कल्पना करे छे के, चंद्र प्रभुनी पासे आवीने प्रार्थना करे छे के, "हे नाथ नित्ये तमारा चरणकमलने जोवानी मारी इच्छा छे, पण हुं शुं करुं के, मारी पासे रहेलो आ मृग मारे वैरी थयो छे. कारण के, ते तमारा भद्र पीठ उपर रहेला सिंहथी बीवे छे. जो ते मृग सिंहथी भय पामतो न-होततो हुं हमेशां तमारा चरणकमलना दर्शन करत. वली हे नाथ, तमारुं ते चरणकमल इंद्रोना मस्तक उपर रहेल पुष्पमालामांथी खरीपडेला पुष्पो-

ए पूजाएलुं छे. अर्थात् इंद्रो तमारा चरणकमलमां नमवाने आवे छे, ते व-
खते तेमना मस्तकमांथी पुष्पो तमारा चरण उपर खरे छे. कहेवानो आशय
एवो छे के, जेमना चरणमां मोटा इंद्रो नमे छे, ते चरणना दर्शननी इच्छा
कोने न थाय. ? ५४

यस्मिन् शृंगस्थलीनां वियति विलुलिते चंद्रकातांशुपुंजे
तिष्ठंतो वारवारं प्रविलुठनकृते सैकतस्य भ्रमेण ।
साटोपध्वानशुष्यन्मुखकुहरतलं व्योमपारं यियासो–
स्तीव्रांशोः सप्तयस्ते किमपि फणिरिपोरग्रजं क्लेदयंति ॥ ५५ ॥

अवचूर्णिः—यस्मिन् शृंगस्थलीनां वियति चंद्रकांतांशुपुंजे विलुलिते प्रसरिते सैकतस्य तटस्य भ्रमेण प्रविलुठनकृते वारवारं तिष्ठंतः व्योमपारं यियासोः तीव्रांशोः ते सप्तयः फणिरिपोः अग्रजं

अरुणं अर्कसारथिं साटोपध्वानेन सक्रोधशब्देन शुष्यत् मुखकुहरतलं यथास्यात्तथा क्रियाविशेषणं याति ॥ ५५ ॥

भावार्थ—जे चैत्यना शिखरनी भूमिओमां जमेला चंद्रकांतमणिना किरणोनो समूह आकाशमां व्याप्त थता तेने जोइ आकाशनी पेलीपार जवाने इच्छनारा सूर्यना घोडाओ तेने रेतीनुं तट धारी तेपर आलोटवाने माटे वारंवार उभा रहे छे. अने तेथी आटोप सहित शब्दो करवाथी जेनुं मुखरूपी गुहातल सारथीनुं सुकाइ जाय छे, एवा गरुडना मोटा भाइ अरुण सारथिने तेओ कांइपण खेद आपे छे. ५५

विशेषार्थ—कुमारविहार चैत्यना शिखर उपर चंद्रकांतमणि जमेला छे, तेना किरणो आकाशमां छवाइ रहे छे, तेने जोइ सूर्यना रथना घोडाओ तेने रेतीनुं तट धारी तेपर आलोटवाने माटे वारंवार उभा रहे छे, आथी

સૂર્યના સારથિ અરુણને ખેદ થઇ પડે છે. કારણ કે, તેઓને હાંકવામાં વધારે શ્રમ લેવો પડે છે. આ વર્ણનથી તે ચૈત્યની ઉંચાઇ અને ચંદ્રકાંત મણિની શોભા દર્શાવી છે. ૫૫

अंभःशोभाहराणां मुहुरतिसरलं भ्राम्यतां भंगजालै-
राकीर्णे चंद्रकांतप्रभवतलशिलादेहलीकुंभभासाम् ।
मान्येभ्यः शंकमानाः सचकितचरणन्यासमुत्क्षिप्य वासः-
प्रांतान् श्रोणीविलंबान् कुलकमलदृशो यस्य मध्यं विशंति ॥५६॥

अवचूर्णिः—मुहुः वारंवारं अतिसरलं भ्राम्यतां अंभःशोभाहराणां चंद्रकांतप्रभवतलशिलादेहलीकुंभभासां भंगजालैः आवर्त्तजालैः आकीर्णं यस्य प्रासादस्य मध्यं मान्येभ्यः शंकमानाः श्रोणीविलंबान् कटिलग्नान् वासःप्रांतान् उत्क्षिप्य कुलकमलदृशः सचकितचरणन्यासं यथास्यात्तथा विशंति ॥ ५६ ॥

भावार्थ—ते चैत्यमां चंद्रकांतमणिनी बनेली तलीयाओनी शिलाओ तथा उंबराओ अने कलशोनी कांतिओ वारंवार अति सरल रीते भम्या करे छे, तेथी ते जलनी शोभाने धारण करे छे. एवी कांतिओनी घुमरीना जालथी ते चैत्यनो मध्य भाग व्याप्त छे, तेनी अंदर कुलीनकांताओ माननीय पुरुषोनी शंका करती अने चकित थइने पगला मुकती पोताना कटी भाग तथा नितंब उपर लटकता वस्त्रोना प्रांत भागने उंचा लइने ते चैत्यना मध्य भागमां प्रवेश करे छे. ८६

विशेषार्थ—कुमारविहार चैत्यमां तलीयानी शिलाओ, उमराओ अने कलशो चंद्रकांतमणिथी बनेला छे, तेनी कांतिओ एवी रीते भम्या करे छे, के जेओ जलना जेवी देखाय छे. तेथी त्यां दर्शन करवाने आवती कुलीन स्त्रीओ ते ठेकाणे जल छे एवुं धारी 'ते केटलुं उंडुं हशे' एवी शंका करे

छे अने तेने लइने ते पग मुकतां जय पामे छे. आवी रीते जलना मापनी शं-
का राखती अने तेथी जय सहित पगला मुकती ते स्त्रीओ तेनी अंदर प्रवे-
श करे छे. आ उपरथी चैत्यना उंबराना कलशनी शोभा केवी उत्तम छे ?
ए वात दर्शावी छे. ५६

यामिन्यां यत्र लोकाः प्रतिकलविगलच्चंद्रकांतांबुपातै-
र्व्यस्तन्यस्तातपत्राः शिरसि मधुमयं गीतमाकर्णयंति ।
सूर्याश्मोच्छालितेभ्यः पुनरहनि लसज्जातवेदःकणेभ्यः
संत्रस्ताः पाणिपद्मास्थितजलकरकास्तोरणं सज्जयंति ॥ ५७ ॥

अवचूर्णिः—यत्र प्रासादे यामिन्यां रात्रौ प्रतिकलविगलच्चंद्रकांतांबुपातैः शिरसि व्यस्त-
न्यस्तातपत्राः लोकाः मधुमयं मधुतुल्यं गीतं आकर्णयंति शृण्वंति । पुनः अहनि दिने सूर्याश्मोच्छालिते-

भ्यः ज्वलजातवेदःकणेभ्यः संत्रस्ताः पाणिपद्मस्थितजलकरकाः लोकाः तोरणं सज्जयंति सज्जं कुर्वंति । व्यस्ताः अमिलिताः ॥ ५७ ॥

भावार्थ—जे चैत्यमां लोको रात्रे दरेक स्थाने गळता एवा चंद्रकांतमणिना जळना पडवाथी मस्तकपर अवळी छत्रीओ धरीने मधुर गीतो सांभळे छे. अने दिवसे सूर्यकांतमणिमांथी उछळता अग्निना तणखाने लइने तेमना हस्तकमळमांथी खसी पडेला जळना पात्रोथी तोरणो रचे छे. ५७

विशेषार्थ—आ श्लोकथी कवि एवुं दर्शावे छे के, ते कुमारविहार चैत्यमां एटलाबधा चंद्रकांतमणिओ छे के, रात्रे तेमांथी जळना बिंदुओ गळवाथी तेमने माथे छत्रीओ राखी गीत सांभळवा पडे छे अने तेमां सूर्यकांतमणिओ एटलाबधा छे के, दिवसे तेमांथी झगता अग्निना तणखा खरवा-

थी लोकोने हाथमां जलना पात्रो राखवा पडे छे. ते पात्रो श्रेणीबंध धरवाथी तोरणनी शोभा बने छे. ५७

यस्मिन्नीलाश्मपूरे तिमिर इव पुरो लोलहस्तं भ्रमंत्यः
क्वापि स्वच्छाश्मभिन्नां क्वचिदलिकतटीं पाणिभिः पीडयंत्यः ।
आत्मीयं क्वापि बिंबं परमनुजभिया दत्तफालं विलंघ्य
क्रामंत्यः पण्यनार्यो निकटभवविटांस्तन्वते स्मेरवक्त्रान् ॥ ५८ ॥

अवचूर्णिः—यस्मिन् प्रासादे क्वापि तिमिर इव नीलाश्मपूरे पुरः अग्रे लोलहस्तं भ्रमंत्यः क्वचित्स्वच्छाश्मभिन्नां अलिकतटीं पाणिभिः पीडयंत्यः मसलयंत्यः क्वापि परमनुजधिया आत्मीयं बिंबं दत्तफालं यथास्यात्तथा विलंघ्य क्रामंत्यः पण्यनार्यो निकटभटविटान् स्मेरवक्त्रान् तन्वते विस्तारयंति । भिन्नां आस्फालितां । निकटभटविटान् आसन्नसुभटजारान् ॥ ५८ ॥

भावार्थ—जे चैत्यमां आवनारी वारांगनाओ नीलमणिना समूहमां

अंधकार धारी पोताना चपळ हस्तने आगळ करी ज्ञमे छे. कोइ ठेकाणे स्फ-टिकमणिथी जुदी पमती खोटी दीवाल धारी तेने पोताना हाथथी दबावे छे. कोइ ठेकाणे पोतानुं प्रतिबिंब पमेलुं जोइ तेने बीजुं कोइ माणस छे, एवो-जय राखी मोटी फाल जरी तेने उल्लंघन करी चाले छे, आथी ते वारांगना-ओ पोतानी पासे रहेला वीर पुरुषोने मुखमां हसावे छे. ५८

विशेषार्थ—ते चैत्यमां नृत्य करवाने वारांगनाओ आवे छे. तेओ त्यां जमेला नीलमणिने जोइ तेमने अंधकारना जेवो देखाव लागे छे, एटले ते-ओ आगल हाथने जमावे छे. कोइ ठेकाणे स्फाटिकमणि आवे एटले त्यां दीवालना भ्रमथी तेनी साथे तेओ हाथ दबावे छे. कोइ ठेकाणे पोतानुं प्र-तिबिंब पमवाथी तेमने कोइ बीजा माणसनो जय लागे छे एटले तेओ फाल आपी ते जाग उल्लंघन करी चाली जाय छे, तेओ पासे रहेला वीट पुरुषोने

हास्य उत्पन्न करे बे. आ उपरथी ते चैत्यमां नीलमणि अने स्फटिकमणिनी विशेष शोजा दर्शावी बे. ५८

बद्धावासस्य यत्र त्रिजगदधिपतेः पार्श्वनाथस्य पाथः–
कुंभैः श्राद्धाः शशांकोपलरजतमयैर्मज्जनं कल्पयंतः ।
पश्यंतः कुंभगर्भाद्द्युतिममृतासितां धारया देवमौलौ
भूयो भूयः पतंतीं न सलिलविरहेऽप्यावहंते विरामम् ॥ ५९ ॥

अवचूर्णिः—यत्र प्रासादे बद्धावासस्य त्रिजगदधिपतेः श्रीपार्श्वनाथस्य शशांकोपलरजतमयैः पाथःकुंभैः मज्जनं कल्पयंतः कुंभगर्भादमृतसितां द्युतिं देवमौलौ धारया भूयोभूयः पतंतीं पश्यंतः श्राद्धाः सलिलविरहेऽपि विरामं न आवहंते उद्घटनं कुर्वंति बद्धावासस्य कृतावासस्य ॥ ५९ ॥

जावार्थ—जे चैत्यमां वास करीने रहेला एवा त्रण जगत्‌ना अधिप-

ति श्री पार्श्वनाथ प्रभुने श्रावको चंद्रकांतमणिना अने रुपाना जलना कल-
शोथी स्नात्र करावे छे ते वखते ते कलशनी अंदरथी अमृतना जेवी उज्व-
ल कांति प्रभुना मस्तक उपर धाराथी वारंवार पडे छे, ते जोइ जलविना प-
ण तेओ स्नात्र करवाथी विराम पामता नथी. ५५

विशेषार्थ—ते चैत्यमां रहेला श्री पार्श्वनाथ प्रभुने श्रावको चंद्रकांत
तथा रुपाना जल कलशोथी स्नात्र करावे छे, ते वखते प्रभुना मस्तकपर ते क-
लशोनी उज्वल कांति पडवाथी ते जल वगरना थया होय तो पण तेनी कां-
तिने लइने ते श्रावको कलशमांथी जल पडे छे, एवुं धारी स्नात्र करतां वि-
राम पामता नथी. अर्थात्. कलश खाली थइ गया होय तोपण तेओ तेने
मस्तकपर धरी राखे छे, कारण के, कलशनी उज्वल कांतिने तेओ जलनी
धारा पडे छे, एम मानी प्रभुना मस्तकपर ते कलशो धरी राखे छे. ते चैत्य-

मां हंमेशां श्रावको तरफथी चंद्रकांत तथा रुपाना कलशोनी प्रजुने स्नात्र कराववामां आवे ले, एम दर्शाव्युं ले. ५ए

सूर्यग्रावोत्थितानां चलचमरमरुद्भिस्फुरच्चापलानां
खेलन्नार्चिःकणानां पणहरिणदृशां भालरंगे समूहः ।
यस्मिन् देवानुभावाज्ज्वलयति न परं वल्लरीः कुंतलानां
पुष्णाति स्वर्णपुष्पप्रकरपरिचितं किंनु शोभाकलापम् ॥ ६० ॥

अवचूर्णिः—यस्मिन् प्रासादे सूर्यग्रावोत्थितानां चलचमरमरुद्भिस्फुरच्चापलानां खेलन् अर्चिःकणानां समूहः पणहरिणदृशां जालरंगे परं केवलं कुंतलानां वल्लरीः न ज्वलयति किंतु स्वर्णपुष्पप्रकरपरिचितं शोजाकलापं पुष्णाति स्वर्णपुष्पप्रकरस्य शेखरस्य परिचितं सदृशं ॥ ६० ॥

जावार्थ—जे चैत्यनी अंदर आवती वारांगनाओना ललाट उपर सू-

र्यकांतमणिमांथी उछेला ज्वालाओना तणखा आवे छे, के जे तणखाओ वीं-
जाता चामरना पवनथी चपलताने स्फुरणायमान करे छे. तथापि ते तणखा-
ओ श्री पार्श्वनाथ प्रभुना प्रभावथी वारांगनाओनी केशलताने दहन करतां
नथी, पण उलटा सूवर्ण पुष्पोना समूहना जेवी शोभाना कलापने पोषण
करे छे. ६०

विशेषार्थ—कुमारविहार चैत्यनी अंदर वारांगनाओ नृत्य करवा आ-
वे छे, ते वखते सूर्यकांतमणिओमांथी अग्निना तणखाओ नीकली तेमना
ललाट उपर पडे छे. परंतु देवाधिदेवना प्रभावथी तेमना केश बलीजता न-
थी, पण तेनाथी उलटा सूवर्ण पुष्पो तेनी उपर गुंथ्या होय, तेवो देखाव
थाय छे, आ उपर सूर्यकांतमणिओनी समृद्धि, वारांगनाओनी नृत्यपूजा
अने देवाधिदेव श्री पार्श्वनाथ प्रभुनो प्रभाव वर्णव्या छे. ६०

यस्मिन्नावर्त्तयंत्याः सहृदयहृदयानंदकान् दृष्टिभेदान्
तन्वंत्यास्तालगीतस्फुटपटहमृदंगानुगां लास्यलक्ष्मीं ।
नृत्यन् बिंबोपनीतैर्नवनवकरणैर्हस्तचारीप्रपंचै-
र्नर्त्तक्याः स्तंभ एकः स्पृशति रजतभूर्नर्त्तनाचार्यलीलाम् ॥६१॥

अवचूर्णिः—यस्मिन् प्रासादे सहृदयहृदयानंदकान् दृष्टिभेदान् आवर्त्तयंत्याः कुर्वंत्याः तालगीतस्फुटपटहमृदंगानुगां सदृशीं लास्यलक्ष्मीं नाटकलक्ष्मीं तन्वंत्याः नर्त्तक्याः बिंबोपनीतैः प्रतिबिंबप्राप्तैः नवनवकरणैः अंगादिवालनैः हस्तचारीप्रपंचैः नृत्यन् रजतभूः एकस्तंभः नर्त्तनाचार्यलीलां स्पृशति। "लास्यं नाट्यं च तांडवं" इति नाममाला ॥ ६१ ॥

भावार्थ—ते कुमारविहार चैत्यनी अंदर एक रूपानो स्तंभ हतो. तेनी अंदर सहृदय पुरुषोना हृदयने आनंद आपनारा कटाक्षोने दर्शावती,

ताल, गीत, ढोलक अने मृदंगने अनुसरी नाचनी शोभाने विस्तारती एक नर्त्तकीना नवनवा हाथना अभिनय—लटका प्रतिबिंब थता हता, तेथी ते स्तंभ नृत्य करतो नृत्याचार्यनी लीलाने धारण करतो हतो. ६१

विशेषार्थ—आ श्लोकथी कविए कुमारविहार प्रासादमां थती नृत्य क्रीडाने चमत्कारीरीते वर्णवी छे. ते प्रसादमां कोइ नाच करनारी स्त्री नृत्य करती हती. नृत्यनी अंदर सहृदय पुरुषोना हृदयने आनंद आपनारा कटाक्षोने ते दर्शावती हती वली ताल गीत, ढोलक तथा मृदंगना नादनें अनुसरी पोतानुं नृत्य चलावती हती. ते साथे ते पोताना हाथना अभिनय करती हती. आ बधो तेणीनो देखाव ते प्रासादना एक स्तंभमां प्रतिबिंब थवाथी—ते स्तंभ जाणे नृत्याचार्य होय तेवो देखातो हतो. रुपेरी स्तंभनी अंदर नाच करनारीनुं प्रतिबिंब पडतुं हतु, तेथी ते जाणे नृत्यनुं शिक्षण आ-

पनार नृत्याचार्य होय, तेवो देखातो हतो. नृत्याचार्य जेवी रीते अभिनय करी बतावे, तेवी रीते तेनी शिष्या नर्त्तकीओ तेने अनुसरीने अभिनय करे छे. ए नृत्यशिक्षणनी पद्धती प्रख्यात छे. ६१

वल्गामुन्मथ्य रथ्यैः प्रतिहतगतिना भानुना निंद्यमानो
युद्धश्रद्धैः प्रतीभप्रभवरवधिया दिग्गजैर्नंद्यमानः ।
यस्याद्वैतं त्रिलोक्यामुपरमविमुखो घोषयन्नुच्चघोषं
श्रद्धालूनां त्रिसंध्यं पटुपटहरवो धूपवेलां ब्रवीति ॥ ६२ ॥

अवचूर्णिः—वल्गां उन्मथ्य त्रोटयित्वा रथ्यैः रथस्य योग्याश्वैः श्रद्धा वासना विद्यते येषां ते श्रद्धालवः । श्रद्धाया आलुः । प्रतिहतगतिना भानुना निंद्यमानः प्रतीभप्रभवरवधिया युद्धश्रद्धैः दिग्गजैर्नंद्यमानः आनंद्यमानः त्रिलोक्यां यस्य प्रासादस्य अद्वैतं एकत्वं उच्चघोषं यथास्यात्तथा कथयन्

उपरमविमुखः पटुपटहरवः स्त्रीपुरुषाणां त्रिसंध्यं त्रिकालं धूपवेलां अर्थात् देवपूजावेलां ब्रवीति प्रथयति ॥ ६२ ॥

भावार्थ—ते कुमारविहार चैत्यनी अंदर थतो मोटो नगारानो अवाज उंचे प्रमाणे घोषणा करी श्रद्धावाला लोकोने त्रणेकाल धूप करवानी वेला जणावे छे. अने अविरतपणे त्रण लोकमां ते प्रासादनी अद्वितीयता प्रगट करे छे. ज्यारे ते ध्वनि प्रगट थाय छे, त्यारे सूर्यना घोडाओ लगामने तोडावे छे, तेथी सूर्यनी गति हणातां सूर्य ते ध्वनिनी निंदा करे छे. अने तेने सांभली युद्धनी श्रद्धावाला दिग्गजेंद्रो पोतानी सामे आवेला बीजा हाथीथी उत्पन्न थयेला शब्दनी बुद्धिथी तेओ आनंद पामे छे. ६२

विशेषार्थ—ते कुमारविहार चैत्यमां ज्यारे धूप करवाना वखतना नगारानो ध्वनि थाय छे, त्यारे धूप पूजा करवानी इच्छावाला लोकोने ते सम-

यनी सूचना थाय छे. वळी ते ध्वनि ' आ प्रासाद जगत्मां अद्वितीय छे '
एम जणावे छे. आ ध्वनिनो अवाज एटलो मोटो थाय छे के जेथी आकाश
मार्गे जतां सूर्यना घोडाओ जरुकी पोतानी लगाम तोडावे छे, एटले सूर्यनी
गतिमां जंग थवाथी सूर्य तेनी निंदा करे छे. बीजी तरफ दश दिशाओमां
रहेला दिग्गजो के जेओ हंमेशा युद्ध करवानी इच्छा राखे छे, तेओ ते वख-
ते समजे छे के, पोतानी सामे थयेला कोइ बीजा गजेंद्रनो आ ध्वनि छे, ते-
थी तेओ सामे थवाने तैयार थाय छे, पण ज्यारे कोइ प्रति गजेंद्र तेमना
जोवामां आवतो नथी एटले तेओ नाखुश थाय छे अने तेथी तेनी निंदा क-
रे छे. आ उपरथी ते प्रासादमां धूप वाद्यना ध्वनिनी प्रौढता दर्शावी छे. ६१

कूपस्तंभानुकारं स्पृशति सितपटोज्ज्वासितस्वर्णदंडे

तन्वाने कांतिदृष्टिं दिशि दिशि कलशे कर्णधारे शिरःस्थे ।
लावण्याद्वैतभाजि स्फटिकमणिशिलाराशिरोचिःपयोधौ
पूर्णं रत्नैरनंतैर्वहति यदनिशं यानपात्रस्य लक्ष्मीम् ॥ ६३ ॥

अवचूर्णिः—अनंतैः रत्नैः पूर्णं यच्चैत्यं कूपस्थंभानुकारं स्पृशति सति सितपटोद्भासितस्वर्णदंडे दिशि दिशि कांतदृष्टिं तन्वाने शिरःस्थे कलश एव कर्णधारे लावण्याद्वैतभाजः स्फटिकमणिशिलाराशिरोचिःपयोधेः यानपात्रस्य लक्ष्मीं शोभां अनिशं वहति कूपस्थंभः कुआथंभइतिप्रसिद्धः । सितपटः ' सढ ' इति प्रसिद्धः तेन उद्भासितः अलंकृतो यः सौवर्णदंडः तस्मिन् । सौम्यदृष्टिं । कर्णं अरित्रं धारयतीति कर्णधारः तस्मिन् । लावण्यं सौभाग्यं पक्षे लावण्यं पानीयं । स्फटिकमणिशिलाराशीनां रोचिषः कांतयः ता एव पयोधिः समुद्रः तस्मिन् यानपात्रस्य प्रवहणस्य ॥ ६३ ॥

भावार्थ—जे कुमारविहार चैत्य हंमेशां वहाणनी शोभाने धारण करे छे. तेना शिखर उपर आवेल उज्वल पताकाथी प्रकाशित एवो सुवर्ण

दंड कूप स्थंभ (मोल) नी तुल्यताने प्राप्त करे छे अने मस्तक उपर आवेलो कलश खलासीनी जेम प्रत्येक दिशामां सुंदर कांतिरूपी दृष्टिने विस्तारे छे. स्फटिकमणि-नी शिलाओना समूहनी कांतिनो समुद्र सर्वत्र लावण्यमय बनी रह्यो छे अने पोते असंख्य रत्नोथी परिपूर्ण छे. ६३

विशेषार्थ—आ श्लोकथी कवि कुमारविहार प्रासादने वाहाणनी उपमा आपे छे. वाहाणमां जेम ऊंचो मोल होय छे, तेम अहिं सफेत पताकावालो सुवर्णनो ध्वजदंड छे. वाहाण उपर अग्रभागे खलासी बेसे छे अने ते पोतानी दृष्टि सर्व दिशाओमां विस्तारे छे, तेम आ प्रासाद उपर कलश प्रत्येक दिशामां पोतानी कांतिरूपी दृष्टिने विस्तारे छे. वाहाणमां जेम समुद्रना अनेक रत्नो भरेला होय छे, तेम आ प्रासाद अनेक रत्नोथी परिपूर्ण छे. अने तेनी अंदर स्फाटिकमणिनी शिलाओनी कांतिनो समूह रहेलो छे. आवी

रीते ते प्रासाद एक सुंदर वहाणनी शोज्ञाने प्राप्त करे छे. ६३

स्तुत्याभिर्मर्त्यसार्थैरनिमिषनयनांभोरुहाभिः समंतात्
पांचालीभिः समेतैः स्फुटमणिगुरुभिर्मेध्यमध्यं विमानैः ।
उन्मीलद्भद्रवेदीप्रणयिहरिहयोत्कृष्टमष्टापदाढ्यं
कृत्वाधः स्वर्गिधामास्थितममृतसमुत्पत्तिगुर्व्यां यदुर्व्याम् ॥ ६४ ॥

अवचूर्णिः—मर्त्यसार्थैः स्तुत्याज्ञिः स्तवनीयाज्ञिः अनिमेषनयनांज्ञोरुहाज्ञिः पांचाली-ज्ञिः पुत्रिकाज्ञिः पक्षे देवीज्ञिः समेतैः सहितैः स्फुटं प्रकरं अतिगुरुज्ञिः विमानैः मेध्यं पवित्रं मध्यं । उन्मीलद् जद्रवेदीप्रणयिहरिहयोत्कृष्टं अष्टापदाढ्यं स्वर्गिधाम सुरालयं अधःकृत्वा यच्चैत्यं अमृतसमुत्प-त्तिगुर्व्यां जर्व्यां पृथिव्यां स्थितं अस्ति । अमृतं मोक्षस्तस्य समुत्पत्तिः समुद्जवस्तेन गुर्वी पक्षे अमृतं सुधा । मर्त्याः मनुष्याः । उन्मीलंतो विनिद्राः । जद्रासिंहासनस्था ये हरयः सिंहाः हया अश्वास्तैरु-त्कृष्टं प्रधानं ॥ ६४ ॥

ભાવાર્થ—જે કુમારવિહાર ચૈત્યનો મધ્ય ભાગ મનુષ્યોના સમૂહે પ્રશંસા કરવા યોગ્ય અને જેમના નેત્રકમલ નિમેષરહિત છે એવી પુતલીઓ વડે યુક્ત અને અતિ મોટા એવા વિમાનોથી પવિત્ર છે, મંગલવેદી ઉપર પ્રકાશ પામતા સૂર્યથી જે ઉત્કૃષ્ટ છે અને જે અષ્ટાપદથી વ્યાપ્ત છે, તે ચૈત્ય અમૃતની ઉત્પત્તિથી મોટી એવી પૃથ્વી ઉપર દેવતાઓના ધામ રૂપ સ્વર્ગનો તિરસ્કાર કરીને રહેલું છે. ૬૪

વિશેષાર્થ—આ શ્લોકથી ગ્રંથકારે કુમારવિહાર ચૈત્યને વ્યતિરેકાલંકારથી સ્વર્ગથી અધિકપણે વર્ણવ્યું છે. સ્વર્ગની અંદર રહેનારી દેવીઓ નિર્નિમેષ દૃષ્ટિવાલી હોય છે અને તેઓ વિમાનમાં બેશી ફરે છે. તેમ આ ચૈત્યની અંદર નિર્નિમેષ દૃષ્ટિવાલી પુતલીઓ વિમાનમાં ચીતરેલી છે. જેમ સ્વર્ગમાં ઇંદ્ર રહે છે, તેમ આ ચૈત્યમાં સૂર્યનું પ્રતિબિંબ પડે છે, તેમ સૂર્યના ચિત્રો પણ છે.

स्वर्गना धाम समीप अष्टापद छे, तेम अहिं अष्टापदनुं चित्र छे तेमज अष्टाप-
द जातना मृगलाना चित्रो छे. स्वर्गमां अमृतनी उत्पत्ति छे, तेम आ चैत्यमां
अमृत–मोक्षनी उत्पत्ति थाय छे. तेथी आ चैत्य स्वर्ग लोकनो तिरस्कार क-
रीने उत्कृष्टताथी रहेलुं छे. ६४.

नीतान्यत्यंतरूढैरवचनविषयं सात्विकैर्विक्लवत्वं
साक्षादस्तानुषंगान्यपि निकटवृहल्लोकलज्जावशेन ।
बिंबान्यन्योन्यमच्छस्फटिकमणिशिलास्तंभयष्टिप्रतिष्टा–
न्याश्लिष्याश्लिष्य यस्मिन् विदधति मिथुनान्यंगकंडूविनोदम् ॥६५॥

अवचूर्णिः—यस्मिन् प्रासादे अत्यंतरूढैः सात्विकैः अवचनविषयं वचनागोचरं विक्लवत्वं
नीतानि निकटवृहल्लोकलज्जावशेन साक्षादस्तानुषंगाण्यपि अन्योऽन्यं अच्छस्फटिकमणिशिलास्तंभय-

ष्टिप्रतिष्ठानि बिंबानि मिथुनानि अन्योऽन्यमाश्लिष्याश्लिष्य अंगकंडूविनोदं विदधति । अत्यंतरूढैः अतिप्रौढैः सात्विकैः मदनोद्दीपकभावैः विक्लवत्वं क्लीबत्वं साक्षात् प्रत्यक्षं । पार्श्वस्थो महल्लोकस्तस्य लज्जा तस्या वशात् अस्तानुषंगान्यपि क्षिप्तसंगान्यपि । अंगकंडूविनोदं सुरतविनोदं । मिथुनानि पुंस्त्रीयुग्मानि ॥ ६५ ॥

भावार्थ—जे चैत्यनी अंदर आवेला स्त्री पुरुषोनां जोमलां अति आसक्त एवा सात्विक भाववमे अनिर्वचनीय एवी आतुरताने पामेला पण पासे जता आवता लोकोनी शरमने लइने परस्पर साक्षात् संगने नहिं पामेला, तथापि निर्मळ स्फटिक मणिनी शिलाना स्तंभमां पमेला परस्पर पोताना प्रतिबिंबोने आलिंगन करी करी पोताना शरीरनी खुजलीनो विनोद करे छे. ६५

विशेषार्थ—ते कुमारविहार चैत्यनी अंदर आवता स्त्रीपुरुषोना जोमां सात्विकभाव उत्पन्न थवाथी आतुर थइ जतां पण त्यां नजीक जता आवतां

लोकोनी शरमने लइने तेओ परस्पर साक्षात् मळता न हता; तथापि त्यां जडेली स्फटिकमणिनी निर्मळ शिलाना स्तंभमां तेमना प्रतिबिंबो पडतां हतां, ते प्रतिबिंबोने आलिंगन करी करी तेओ पोताना शरीरनी खुजळी नो—भोगनो विनोद लेता हता. आ उपरथी ते चैत्यमां स्फटिकमणिओनी समृद्धि दर्शावी छे. ६५

भित्तिस्तंभप्रकोष्टान् स्फुटरुचिपटलीमैत्र्यरोचिष्णुदेहान्
चक्षुःसान्मुख्यभाजः प्रतिनिधितरलान् सादरं वीक्षमाणः ।
कोणादिच्छादितानामपि मुदममुदं तुष्टरुष्टाननानां
यस्मिन् गंधर्वलोकः कलयति बहिरप्यासितो मध्यगानाम् ॥६६॥

अवचूर्णिः—यस्मिन् प्रासादे स्फुटरुचिपटलीमैत्र्यरोचिष्णुदेहान् चक्षुःसान्मुख्यभाजः

प्रतिनिधितरल्लान् न्नित्तिस्तंनप्रकोष्टान् सादरं वीक्षमाणः बहिरपि आसितो गंधर्वल्लोकः कोणादिच्छादितानामपि तुष्टरुष्टाननानां मध्यगानां पुरुषाणां मुदं अमुदं कल्लयति जानाति। प्रकोष्टान् कोणान्। प्रतिनिधिः प्रतिबिंबं। स्फुटरुचिपटल्या मैत्र्यं सूर्यत्वं तद्वद्रोचिष्णुदेहान् ॥ ६६ ॥

न्नावार्थ—स्फुट एवी कांतिना समूहनी तुल्यताथी जेमना देह प्रकाशमान थइ गयेल्ला ळे, जेओ नेत्रोनी सन्मुख रहेल्ला ळे अने जेओ प्रतिबिंबोने ल्लइने चंचळ देखाय ळे, एवा न्नींतोना स्तंन्नोना प्रकोष्टने आदरथी अवल्लोकन करतो गंधर्वल्लोक जे चैत्यनी बाहेर बेसारवामां आवेल्लो छे, तोपण चैत्यना मध्य न्नागे रहेल्ला मनुष्यो के जेओ खूणा विगेरेथी ढंकाइ रहेल्ला छे, तेथी तेमना मुख संतोष तथा रोषथी युक्त थयेल्ला छे, ते तेमना आशयने जाणे ळे. ६६

विशेषार्थ—ते कुमारविहार चैत्यनी अंदर गंधर्वल्लोक तेनी बाहेर बे-

बेला छे, तोपण ते चैत्यनी मध्य भागे बेठेला लोकोना आशयने जाणे छे. कारण के, जेओ चैत्यना खूणा विगेरेथी आच्छादित थयेला छे, तेमना मुख उपर रोष उत्पन्न थयेलो छे, पण तेओ गंधर्वलोकने चैत्यनी बाहेर बेठेलो जाणी मुख उपर संतोष धारण करे छे. वळी ते गंधर्वलोक चैत्यनी दीवालोना स्तंभना प्रकोष्टने आदरथी जोवे छे–जे प्रकोष्टनी स्फुटकांतिथी तेमना देह प्रकाशमान थइ रह्या छे अने तेओ तेमना नेत्रोनी समीपे आवेला छे, तेथी तेमना प्रतिबिंबो तेओनी अंदर पडे छे. कहेवानो आशय एवो छे के, कुमारविहार प्रासादनी अंदर हमेशां गंधर्वलोक आवी गंमत करे छे. ६६ ॥

गीतज्ञैर्वार्यमाणैरपि किमपि जिनस्याज्ञया श्राद्धलोकै–
र्घंटानां ताडितानां प्रतिरवमुखरस्तारटंकारपूरः ।

तांस्तान् क्लेशोपनीतान् श्रुतिषु मधुमुचो गेयवाद्यप्रभेदान्
व्यर्थीकुर्वन् सशोकं विरचयति चिरं यत्र गंधर्वलोकम् ॥ ६७ ॥

अवचूर्णिः—यत्र गीतज्ञैः गेयशास्त्रज्ञैः किमपि किंचिदपि वार्यमाणैरपि श्राद्धलोकैः जिनस्य आज्ञया जिनभक्त्या ताडितानां घंटानां प्रतिरवमुखरः श्रुतिषु श्रवणेषु मधुमुचः क्लेशोपनीतान् तांस्तान् गेयवाद्यप्रभेदान् व्यर्थीकुर्वन् तारटंकारपूरः गंधर्वलोकं चिरं सशोकं रचयति ॥ ६७ ॥

भावार्थ—संगीतने जाणनारा लोकोए वारेला छतां पण जिनभगवंतनी आज्ञाने–भक्ति लइने श्रावकोए वगाडेली घंटाओना दीर्घ टकोरानो समूह के जे प्रतिध्वनिथी वागतो हतो. ते घणी मेहेनतथी करवामां आवेला अने श्रवणनी अंदर माधुर्यने आपनारा गीत तथा वाद्यना भेदने व्यर्थ करे छे, तेथी ते चैत्यनी अंदर रहेला गंधर्व लोकोने ते घंटाना टकोरानो समूह चिरकाल शोकसहित करे छे. ६७

विशेषार्थ—आ श्लोकमां ग्रंथकार कुमारविहार चैत्यना दर्शनना माहात्म्यने दर्शावे छे, ते चैत्यनी अंदर एटलाबधा नाविक श्रावको दर्शने आवे छे के, तेमणे करेला घंटाओना नादोनो समूह त्यां गायन करनारा गंधर्वोने शोकसहित करी नाखे छे. कारणके, घंटाओना शब्दोथी अने तेमनो प्रतिध्वनि संगीतना माधुर्यनो नंग करे छे. ते उपरथी सिद्ध थाय छे के, ते चैत्यनी अंदर घणां दर्शन करनारा अने गायन करनारा गंधर्वो आव्या करे छे. ६७

मुह्यंत्यो नीलभासि द्रुततरगतयो द्वारि सूर्योपलानां
हृष्यन्त्यः पुत्रिकासु प्रचकितमनसः पीठपंचाननेभ्यः ।
क्लामंत्यः श्राद्धबाधैः पुलकितवपुषो वल्लभांगानुषंगे—

नृत्यंत्यस्तूर्यनादैर्विदधति सुदृशो यत्र यूनां प्रमोदम् ॥ ६८ ॥

अवचूर्णिः—यत्र प्रासादे नीलभासि मुह्यंत्यः सूर्योपलानां द्वारि द्रुततरगतयः पुत्रिकासु हृष्यंतः पीठपंचाननेभ्यः प्रचकितमनसः श्राद्धबाधैः क्लामंत्यः वल्लभानुषंगैः पुलकितवपुषः तूर्यनादैः नृत्यंत्यः सुदृशः स्त्रियः यूनां प्रमोदं विदधति । दृशःशब्दः स्त्रियां व्यंजनांतः । यूनां तरुणानां ॥ ६८ ॥

भावार्थ—ते कुमारविहार चैत्यनी अंदर आवनारी सुंदरीओ नीलमणिनी कांतिवाळा द्वारमां मुंझाइने उतावळी चालती, सूर्यकांतमणिओनी पुतळीओने जोइ खुशी थती, पीठ उपर आवेला केशरी सिंहनी प्रतिमा जोइ मनमां भय पामती, श्रावकोनी भीडनी बाधाथी संकोचाती, पोताना पतिओना अंग साथे मळवाथी शरीरे पुलकावळी धारण करती अने वाजित्रोना नादोथी नृत्य करती युवान पुरुषोने हर्ष आपती हती. ६८

विशेषार्थ—आ श्लोकथी ग्रंथकार ते प्रासादना ऐश्वर्यने अलंकारिक ज्ञाषाथी वर्णवे छे. अने ते प्रासादमां दर्शन करवाने आवती स्त्रीओनी विविध प्रकारनी चेष्टाओ वर्णवे छे. नीलमणि, सूर्यकांतमणि, सिंहनी प्रतिमाओ, श्रावकोनी जीम, पतिओना अंगनो स्पर्श अने वाजित्रोना नादथी ते स्त्रीओनी विविध चेष्टाओ थाय छे. अने ते जोइ त्यां आवनारा युवान पुरुषोने आनंद उपजे छे. ६८

स्वां स्वां निर्वर्ण्य भित्तौ प्रतिकृतिरचनां प्रेयसीविभ्रमेण
भ्रांत्वा भ्रांत्वा प्ररोहन्नवनवपुलकं यत्र नृत्यंति सद्यः ।
आरावैस्तारमंद्रैर्विधुरितहरितां केकिपारापतानाम्
वृंदान्यालोक्य कस्कः कलयति न मुदं तीव्रशोकोऽपि लोकः ॥६९॥

अवचूर्णिः—यत्र प्रासादे भित्तौ प्रेयसीविभ्रमेण स्वां प्रतिकृतिरचनां निर्वर्ण्य भ्रांत्वा भ्रांत्वा भ्रमरीर्दत्वा प्ररोहन्नवपुलकं यथा स्यात्तथा सद्यः नृत्यंति । तारामंद्रैः आरावैः विधुरितहरितां केकिपारापतानां वृंदानि आलोक्य सशोकोऽपि कस्को लोकः मुदं न कलयति । प्रतिबिंबरचनां ज्ञात्वा उद्गच्छन्नवरोमांचं मुखरितदिशाम् ॥ ६ए ॥

भावार्थ—ते कुमारविहार चैत्यनी अंदर दीवालोनी अंदर पोतपोताना प्रतिबिंबोनी रचना जोइ पोतानी प्रियाओना भ्रमथी भमी भमी नवीन रोमांचने धारण करी नृत्य करता अने लांबा तथा मंद स्वरोथी दिशाओने गजावता एवा मयूर तथा पारेवाना टोलाओने जोइ कया लोको तीव्र शोकवाला होय तोपण हर्षने नथी धारण करता ? अर्थात् सर्वे लोको हर्षने धारण करे छे. ६ए

विशेषार्थ—आ श्लोकमां कुमारविहारचैत्यनी दीवालोनी शोभा द-

शावी छे. ते दीवालोनी अंदर एवा सुंदर रत्नो जमेला हता के, जेनी अंदर त्यां आवनारा मयूर तथा पारेवा पक्षीओना प्रतिबिंबो पडता हता. ज्यारे ते पक्षीओ पोताना प्रतिबिंबोने जोतां त्यारे तेओने पोतानी मादाओनो भ्रम थइ आवतो, तेथी ते शरीरे रोमांचने धारण करी नाचता अने पोताना लांबा तथा मंद स्वरोथी दिशाओने गजावी मुकता हता. आ देखाव जोइ शोकवाला लोको पण खुशी थइ जता हता. ६९

यस्य श्रोतुं गुणौघं त्रिभुवनमहितं शंसितुं चारिमाणं
नंतुं पूजां च कर्त्तुं यदधिनिवसतो देवदेवस्य भूयः ।
जंभारातिः सदैव स्पृहयति मनसा लोचनानामिवोद्यद्-
बाष्पास्नातः सहस्रं श्रुतिरसनाशिरःपाणिपंकेरुहाणाम् ॥ ७० ॥

अवचूर्णिः—यदधिनिवसतो यस्य देवस्य त्रिभुवनमहितं गुणौघं श्रोतुं चारिमाणं शंसितुं नंतुं पूजां च कर्तुं सदैव जंभाराातिः उद्यद्बाष्पस्नातः लोचनानां सहस्रमिव भूयः श्रुतिरसनशिरःपाणिपंकेरुहाणां स्पृहयति । यस्मिन्नधि यदधि प्रासादमध्ये इत्यर्थः । विभक्तिसमीपेति सूत्रेणाव्ययीभावः । जंभारातिः इंद्रः । निर्गच्छन्नेत्रांबुस्नपितं सहस्रमित्यत्र स्पृहेर्वाच्यंवेति द्वितीया । रसनाशब्दः पुंस्त्रीलिंगः ॥ ७० ॥

भावार्थ—जे कुमारविहार चैत्यनी अंदर वास करीने रहेला देवाधिदेव प्रभुनो त्रण भुवनने पूज्य एवो गुणोनो समूह वारंवार सांभळवाने, तेमना सौंदर्यनी प्रशंसा करवाने, तेमने नमवाने, अने तेमनी पूजा करवाने उत्पन्न थयेला प्रेमाश्रुथी न्हाएलो इंद्र हंमेशां पोताना नेत्रोनी जेम हजार कान, जिह्वा, मस्तक अने हस्त कमळोनी सदा स्पृहा राखे छे ७०.

विशेषार्थ—ते कुमारविहार चैत्यनी अंदर रहेला श्रीपार्श्वनाथ प्रभुना

गुणोने सांभळवाने, तेमना सौंदर्यनी प्रशंसा करवाने, तेमने नमवाने अने तेमनी पूजा करवाने इंद्र एटलोबधो उत्सुक छे के, तेने माटे जेम पोताने हजार नेत्रो छे, तेवी रीते हजार कान, हजार जिह्वा, हजार मस्तक अने हजार हाथनी इच्छा करे छे. अर्थात् ते मनमां एवुं धारे छे के, “ जेम मारे हजार आंखो छे, तेम जो हजार कान, हजार जिभो, हजार मस्तको अने हजार हाथो होय तो वधारे सारुं. तेनाथी हुं आ पार्श्वनाथ प्रभुना गुणोनुं श्रवण, तेमना सौंदर्यनी प्रशंसा अने तेमनी पूजा करी मारा आत्माने कृतार्थ करुं. कहेवानो आशय एवो छे के, ते कुमारविहार चैत्यनी अंदर रहेली श्री पार्श्वनाथ प्रभुनी प्रतिमा एवी महिमावंत हती, के जेने माटे इंद्र आवी उत्तम स्पृहा राखतो हतो. ७०

श्राद्धाः पुण्यविधित्सया गुरुरुजो रोगापहारेच्छया

दक्षाः शिल्पदिदृक्षया कुवपुषः सौभाग्यभाग्याशया ।
क्षीणार्था धनकाम्यया रसजुषः संगीतकश्रद्धया
भृत्याः प्राभवलिप्सया तनुभृतो यत्रासते संततम् ॥ ७१ ॥

अवचूर्णिः—यत्र प्रासादे संततं श्राद्धाः तनुभृतः पुण्यविधित्सया गुरुरुजो महद्रोगाः रोगापहारेच्छया दक्षाः शिल्पदिदृक्षया कुवपुषः सौभाग्याभाग्याशया क्षीणार्थी धनकाम्यया रसजुषः संगीतकश्रद्धया भृत्याः प्राभवलिप्सया आसते तिष्ठंति । विधित्सा चिकीर्षा । दिदृक्षया द्रष्टुमिच्छया । आशया वांछया । धनकाम्यया धनवांछया । रसः शृंगारादिः तं जुषंतीति तज्जुषः क्विप् संगीतकं नाटकं तस्य श्रद्धा भावस्तया तनुभृतः सर्वत्र प्रयोज्यं । प्रभोर्भावः प्राभवं ॥ ७० ॥

भावार्थ—श्रावको पुण्य करवानी इच्छाथी, महारोगीयो रोगोने दूर करवानी इच्छाथी, चतुर पुरुषो कारीगरी जोवानी इच्छाथी, कुरूपी लोको सौंदर्यना भाग्यनी आशाथी, निर्धन पुरुषो द्रव्यनी कामनाथी, रसिक पुरूषो सं-

गीतनी श्रद्धाथी अने सेवको स्वामीपणुं मेळववानी इच्छाथी जे चैत्यनी अं-
दर हंमेशां रह्या करे छे. ७१

विशेषार्थ—आ श्लोकथी ग्रंथकार जणावे छे के, ते चैत्य एटलुंबधुं उत्तम छे के, घणा लोकोने तेमांथी विविध प्रकारना आनंद मळे छे. श्रावकोने पुण्य मळे छे, रोगीओ पोताना रोगने दूर करी शके छे, चतुर पुरुषो तेनी कारीगरी जोइ खुशी थाय छे, कुरूपी लोको तेनी सेवाथी सौंदर्यने प्राप्त करी शके छे, निर्धन पुरुषो द्रव्यनी कामना मेळवी शके छे. रसिक पुरुषोने त्यां संगीतनो आनंद मळे छे अने सेवा वृत्ति करनारा पुरुषो ते चैत्यनी सेवाथी स्वामिपणानो लाभ प्राप्त करी शके छे. ७१

देवोऽयं कलधौतजः शशिशिलास्तंभा अमी पुत्रिका

सेयं चंचलकंकणा गृहमिदं नाटयस्य दृश्यावधिः ।
व्याख्यासंसदियं विराममकरोन्निर्माय यां सूत्रकृत्
त्रैलोक्याद्‌भुतमीक्षतां पुनरमुं राजेव चित्रालयं ॥ ७२ ॥
एतान् पश्यत चीनचीररचितांश्चंद्रोदयान् मौक्तिक-
प्रालंबः पुनरेष यस्य घटने ब्रह्मापि जिह्मायते ।
यक्षेंद्रश्च महाबलः पुनरयं सत्यावपातो नृणां
यत्रैवं द्रविणाशया वितृणुते स्त्रैणाय देवार्चकः ॥ ७३ ॥

अवचूर्णिः—कलधौतजः अयं देवः अमी शशिशिलास्तंभाः चंचलकंकणा सा इयं पुत्रिका दृश्यावधि नाट्यस्य इदं गृहं यां निर्माय सूत्रकृद् विराममकरोत् सा इयं व्याख्यासंसद् पुना राजेवामुं चित्रालयं एतान् चीनचीररचितान् चंद्रोदयान् पश्यत यस्य घटने ब्रह्मापि जिह्मायते स एष मौक्तिकमा-

लंबः पुनर्यक्षेंद्रो महाबलः पुनरयं नृणां सत्यावपातः एवं अनेन प्रकारेण यत्र प्रासादे देवार्चकः स्त्रैणाय स्त्रीसमूहाय द्रविणाशया विवृणुते व्याख्यानयति । विरामो निवृत्तिः । राजा नृपः स इव । चित्रालयं । चित्रगृहं । मौक्तिकप्रालंबः मुक्ताहारः श्रीपार्श्वस्येति गम्यं । श्रीहेमाचार्य गुरवः तत्र सभ्याः कुमारपालादयः श्रीमंत इति व्याख्यासभा । सत्यावपातः सत्यनिश्चयः ॥ ७१—७२ ॥ युग्मम् ।

भावार्थ—'आ देव श्री पार्श्वनाथ प्रभु सोनाना छे,' 'आ स्तंभो चंद्रकांतमणिना छे,' 'आ पुतळी चंचळ कंकणवाळी छे,' 'आ दर्शनीय वस्तुनी अवधि रूप नाटयगृह छे,' 'आ व्याख्यानशाळा छे, के जेने रचीने सूत्रधार (सुथार) विराम पामी गयो छे. 'वळी त्रण लोकमां अद्भुत एवुं आ चित्रालय राजानी जेम जुवो,' चीनाइ वस्त्रोना रचेला आ चंदरवा विलोको, आ मोतीओना चंदरवानी झुल के जेने रचवामां ब्रह्मा पण वक्र थइ जाय छे, अने आ महाबल नामे यक्षेंद्र (पार्श्वयक्ष) छे के, जेने देखी लोकोने ते सत्य छे,

એવું જ્ઞાન થાય છે. " આ પ્રમાણે જેમાં તે પાર્શ્વનાથ પ્રભુની પૂજા કરનાર પુરુષ સ્ત્રીઓને દ્રવ્યની આશાથી વર્ણન કરી બતાવે છે. " ૭૨—૭૩

વિશેષાર્થ—તે કુમાર વિહાર ચૈત્યની અંદર પ્રભુની પૂજા કરનાર પુરુષ સ્ત્રીઓની આગળ દ્રવ્ય લેવાની આશાથી વર્ણન કરે છે—એટલે તેઓ-ને દ્રવ્ય મળે એવી આશાથી સ્ત્રીઓને તે ચૈત્યના ભાગ વર્ણન કરી બતાવે છે. તેમાં પ્રભુની મૂર્ત્તિ, સ્તંભો, પુતળીઓ, નાટયગૃહ, વ્યાખ્યાનશાળા ચિત્રગૃહ, ચીનાઇ વસ્ત્રના ચંદરવા, મોતીઓના ચંદરવાની ઝુલ, અને મહાબલ યક્ષેંદ્ર (પાર્શ્વયક્ષ) એ બધા પદાર્થો બતાવે છે. ૭૨—૭૩

आत्मीयं वीक्ष्य कांताप्रतिनिधिसविधे बिंबमाक्रीडमानं
तत्कालोद्बुद्धकंपां परपुरुषधिया गात्रयष्टिं वहंतः ।

आध्नंतश्चंचुकांडैरथ नखकुलिशैरत्नाभित्तीः सचित्रा
बाधंते रक्षकाणां गणमरुणदृशो यत्र नित्यं विहंगाः ॥ ७४ ॥

अवचूर्णिः—यत्र प्रासादे कांताप्रतिनिधिसविधे आक्रीडमानं आत्मीयं बिंबं वीक्ष्य तत्कालोद्बुद्धकंपां गात्रयष्टिं वहंतः अथ पुनः चंचुकांडैः नखकुलिशैः सचित्रा रत्नभित्तीराघ्नंतः अरुणदृशो विहंगाः रक्षकाणां गणं बाधंते । कांता विहंग्यः तासां प्रतिनिधिः प्रतिबिंबं तस्य समीपे आत्मीयं प्रतिबिंबं आक्रीडमानं विलोक्य 'अयं परपुरुष' इति तत्कालोद्बुद्धः उत्पन्नः कंपो यत्र एवं विधां गात्रयष्टिं वहंतः अतएव रुषा अरुणदृशः अत एव भित्तीराघ्नंतः रक्षकाणां आरक्षकाणां समूहं बाधंते उच्चाटयंति । नखानां तीक्ष्णत्वेन वज्रोपमानं । चंचुकांडैः चंचुसमूहैः ॥ ७४ ॥

भावार्थ—जे कुमारविहार चैत्यनी अंदर पक्षीओ पोतानी मादाओना प्रतिबिंबनी पासे पोतानुं क्रीडा करतुं प्रतिबिंब जोइ परपुरुषनी बुद्धिथी पोतानी गात्र रूप यष्टिने (लाकडीने) तत्काल कंपायमान करता नेत्रोने

राता करता, अने पोतानी चंचूओथी तथा नख रूप वज्रोथी तेनी चित्रस हित रत्नमय दीवालोपर ताडन करता ते चैत्यना रक्षकोना गणने हेरान करे छे. ७४

विशेषार्थ—आ काव्यथी कवि कुमारविहार चैत्यनी रत्नमय दीवालो-नुं युक्तिथी वर्णन करे छे. ते चैत्यनी अंदर एवी सुंदर रत्नमय दीवालो आ-वेली छे के, जेमां पक्षीओना नरमादा आवी क्रीडा करे छे. नरपक्षीओ ते र-त्नमय दीवालनी अंदर पोताना प्रतिबिंबने मादाओनी साथे क्रीडा करतां जोइ बीजा नरनी शंका लावे छे, तेथी तेओ पोताना शरीरने कंपावी अने क्रोधथी राता नेत्रोकरी चांचोथी अने नखोथी ते दीवालो उपर प्रहार करे छे, आथी तेना रखवालोने घणी हेरानगति भोगववी पडे छे. ७४

अस्ति स्वस्तिप्रशास्तिः शिवपुरसरणिः कार्मणं लोचनानां

तंत्रं मंत्रोऽथ लक्ष्म्या हठहरणविधौ नाथ चैत्यं पृथिव्याम् ।
एवं यस्य स्वरूपं सदसि निशमयन् जंभभेदी सुरेभ्यः
प्रत्यूहव्यूहमंतः कलयति मधुरां तुंबुरोर्गानकेलिम् ॥ ७५॥

अवचूर्णिः—हेनाथ स्वस्ति कल्याणानां प्रशस्तिः वर्णपद्दिका शिवपुरस्य सरणिः मार्गः लोचनानां कार्मणं वशीकरणं लक्ष्म्या हठहरणविधौ तंत्रं अथ वार्थे मंत्रः पृथिव्यां चैत्यं प्रासादोऽस्ति एवं अनेन प्रकारेण सदसि यस्य प्रासादस्य स्वरूपं सुरेभ्यः सुरसकाशात् निशमयन् शृण्वन् जंभभेदी इं-द्रः अंतर्मनसि तुंबुरोर्गंधर्वस्य गानकेलिं प्रत्यूहव्यूहं कलयति जानाति ॥ ७५ ॥

भावार्थ—'हे नाथ, कल्याणनी प्रशस्तिरूप, मोक्ष नगरना मार्ग रूप, नेत्रोने कामण रूप अने लक्ष्मीने हठथी हरण करवामां तंत्र तथा मंत्र रूप एवुं एक चैत्य पृथ्वी उपर छे' आ प्रमाणे इंद्र पोतानी सभामां देवताओ-

नी पासेथी जे कुमारविहार चैत्यनुं स्वरूप सांजळी त्या चालती तुंबुरु गंधर्व-
नी मधुर गायनकलाने पण तेनी अंदर अंतरायना समूह रूप जाणे छे. ७५

विशेषार्थ—इंद्र ज्यारे पोतानी सजामां बेशी तुंबुरु गांधर्वनी मधुर गायन कळा सांजळे छे, ते वखते देवताओ तेनी आगळ कुमारविहार चैत्य-नी आ प्रमाणे प्रशंसा करे छे–"हे स्वामी, पृथ्वी उपर कुमारविहार नामे एक एवुं चैत्य छे के, ते कल्याणनी प्रशस्ति (प्रशंसापत्र) रूप छे, मोक्षमार्ग-मां जवानो मार्ग छे, नेत्रोनुं कामण छे, अने लक्ष्मीने बळात्कारे हरण करवा-नो मंत्र तंत्र छे." आ प्रशंसा सांजळी इंद्र एटलोबधो ते सांजळवाने इंते-जार थाय छे के, तेने पछी तुंबरु गांधर्वनुं मधुर गायन तेमां अंतराय रूप थइ पडे छे. ७५

तांस्तान् दृश्यावतंसांस्तुहिनगिरिकुबेराद्रिहेमाचलादीन्

भूयो भूयोऽवलोक्य प्रशममुपययौ कौतुकं चेत्तदास्व ।
नोचेत्कांचिद्विभूषां कुरु हृदयहरीं तां व्रजामो धरित्री-
मित्थं स्वां स्वां पुरंध्रीमभिदधति मुहुर्यत्र यात्रासु देवाः ॥ ७६ ॥

अवचूर्णिः—दृश्यावतंसान् दर्शनीयपदार्थेष्ववतंसान् मुकुटसमान् तान् तान् तुहिनगिरि कुबेराद्रिहेमाचलादीन् भूयो भूयः पुनः पुनरवलोक्य चेद्यदि कौतुकं प्रशमं उपययौ तदा आस्व नोचेत् कांचित् हृदयहरीं विभूषां कुरु तां धरित्रीं व्रजामः इत्थं अनेन प्रकारेण यत्र प्रासादे यात्रासु देवाः स्वां स्वां पुरंध्रीं प्रति मुहुर्वारंवार अभिदधति कथयंति । तुहिनगिरिः हिमाद्रिः । कुबेराद्रिः कैलाशः । हेमाचलो मेरुः ॥ ७६ ॥

भावार्थ—जे चैत्यनी अंदर यात्राने विषे देवताओ पोतपोतानी स्त्रीने वारंवार आ प्रमाणे कहे छे—दर्शनीय पदार्थोमां मुगट रूप एवा ते ते तुहिनगिरि, कुबेराद्रि अने हेमाचल वगेरेने वारंवार जोइने जो तारुं कौतुक शांत थयुं होय तो

अहिं देवलोकमांज बेशी रहो अथवा जो न थयुं होय तो कोइ हृदयने ह-
रनार आनूषण करो आपणे ते चैत्यनी नूमिमां जइए. ७६

विशेषार्थ—आ श्लोकथी ग्रंथकारे देवनूमिमां पण ते कुमारविहार
चैत्यनी यात्रानुं माहात्म्य दर्शावेलुं छे. देवनूमिमां देवताओ पोतानी स्त्रीओ-
ने कहे छे के. ' जो हिमालय, कैलास अने मेरु पर्वत वगेरे पर्वतोने वारंवार
जोइ तमारुं कौतुक शांत थयुं होयतो आ देवनूमिमां बेशी रहो, नहींतो
कोइ मनोहर आ नूषण धारण करी ते मर्त्य लोकमां आवेला ते कुमारवि-
हार चैत्यनी यात्रा करवाने आपणे जइए, अर्थात् ते एटलुंबधुं जोवा लायक
छे के, तमने कौतुक उत्पन्न थयाविना रहेशे नहीं. जे दर्शनीय पदार्थो तमे
स्वर्गमां जोवो छो, तेनाथी ते अधिक दर्शनीय छे. ७६

यस्यालोकादशेषाद्भुतसलिलनिधेरुग्रमाहात्म्यतो वा

नासौ प्राणी न योऽभूत्प्रमदपरमना भूर्भुवःस्वस्त्रयेऽस्मिन् ।
शेषे पार्श्वस्य पार्श्वे सततमधिगते भूतधात्रीमधस्ता-
देकः शश्वद्दधानो मनसि यदि परं दुःस्थितः कूर्मराजः ॥७७॥

अवचूर्णिः—अशेषादद्भुतसलिलनिधेः यस्य प्रासादस्य आलोकात् वा अथवा उग्रमाहात्म्यतः अस्मिन् भूर्भुवःस्वस्त्रये प्राणी नास्ति यः प्रमदपरमना न अभूत् परं केवलं पार्श्वस्य पार्श्वनाथस्य पार्श्वे समीपं सततं निरंतरं अधिगते प्राप्ते शेषे सति भूतधात्रीं पृथ्वीं अधस्तात् निरंतरं दधानः एकः कूर्मराजः मनसि यदि दुःस्थितः अस्ति। अद्भुतानि आश्चर्याणि तेषां सलिलनिधिः समुद्रः। प्रमदेन हर्षेण परं प्रकृष्टं मनो यस्य प्राणिनः ॥ ७७ ॥

भावार्थ—समग्र अद्भुतोना समुद्ररूप एवा जे चैत्यना जोवाथी अथवा तेना मोटा माहात्म्यथी आ त्रणे लोकमां एवो कोइ प्राणी न हतो के, जेनुं मन ते जोइ हर्षित थयुं न होय. परंतु ते चैत्यमां रहेला श्रीपार्श्वनाथ

प्रभुनी पासे सतत शेषनाग रहेतो, तेथी आ पृथ्वी नीचे तेने सतत धारण करी रहेलो कूर्मराज (काचबो) एकज जो पोताना मनमां दुःखी रहेतो होय तो वखते संभवे छे. ११

विशेषार्थ—आ श्लोकथी कविए ते चैत्य अने तेनी अंदर बिराजमान थयेला श्री पार्श्वनाथ प्रभुनो अद्भुत महिमा दर्शाव्यो छे. ते चैत्य एवा अद्भुतनो महासागर हतुं, के तेने जोनार दरेक माणस हृदयमां अति आनंद पाम्या विना रहेतो नहीं. तेमां कवि एक कल्पना करे छे के, दरेक माणस ते चैत्यने जोइ आनंद पामतो पण वखते लौकिकमां कहेवा प्रमाणे आ पृथ्वी नीचे रहेलो कूर्म एक नाखुश थतो हशे कारण के, पृथ्वीने धारण करवामां साथे रहेनार शेषनागने श्रीपार्श्वनाथ प्रभुए पोतानी पासे राख्यो छे, ते वात पृथ्वीने एकला धारण करी रहेला काचबाथी सहन थइ शकती

नहीं होय. श्रीपार्श्वनाथ प्रभुना मस्तकपर शेषनाग (धरणेंद्र) छत्र करी रहे छे, ए वात सर्वने विदित छे. ते उपर कविनी आ कल्पना छे. ७७

यत्र स्नात्रस्य मंत्रैस्त्रिजगदसुमतां क्षोभयंत्रैकमित्रै-
र्बिभ्रत्प्रेंखामकांडे विविधमणिमयं भद्रपीठं निरीक्ष्य ।
आयुःसीमाभिशंकी मनसि स भगवान् पाककांतालकश्री-
कीनाशः शेखरस्थैर्विकसितकुसुमैर्लभ्यते स्वास्थ्यमिंद्रः ॥ ७८ ॥

अवचूर्णिः—यत्र प्रासादे त्रिजगदसुमतां क्षोभयंत्रैकमित्रैः स्नात्रस्य मंत्रैः अकांडे अप्रस्तावे प्रेंखां बिभ्रत् धरत् विविधमणिमयं भद्रपीठं सिंहासनं निरीक्ष्य पाककांतालकश्रीकीनाशः स भगवान् इंद्रः मनसि आयुःसीमाभिशंकी शेखरस्थैः विकसितकुसुमैः स्वास्थ्यं लभ्यते प्राप्यते । पाको दैत्यः तस्य कांता कलत्रं तस्या अलकश्रीः वेणी तस्यां कीनाशः यमः । स्वास्थ्यं मनः समाधिं । विकसितकुसुमैः कर्तृभिः ॥ ७८ ॥

भावार्थ——जे कुमारविहार चैत्यनी अंदर त्रण जगत्ना प्राणीओने क्षोभ करवामां यंत्रना जेवा स्नात्रना मंत्रोथी अवसर वगर अकस्मात् कंपने धारण करता पोताना विविधमणिना सिंहासनने जोइ पाक नामना दैत्यनी स्त्रीनी केशश्रेणीने नाश करवामा यमराज जेवो भगवान् इंद्र पोताना आयुष्यनो छेडो आववानी शंका करे छे, पण पोताना मुगट उपर रहेला विकाशी पुष्पोथी ते स्वस्थताने पामे छे. १८

विशेषार्थ——आ काव्यमां कविए कुमारविहार चैत्यमां थता स्नात्रोत्सवनो महिमा वर्णव्यो छे. ज्यारे ते चैत्यमां रहेला श्रीपार्श्वनाथ प्रभुने स्नात्र करवामां आवे छे अने ते वखते तेना मंत्रो उच्चारवामां आवे छे, ते वखते तेनी असरथी इंद्रनुं सिंहासन कंपायमान थाय छे——एटले इंद्रने शंका पडे छे के, 'शुं मारा आयुष्यनो अंत आव्यो?' आथी ते पोताना मुगट उपर

रहेला पुष्पोनुं अवलोकन करे छे, ते वखते पुष्पोने विकासित जोइ तेना मनमां धीरज आवे छे के, मारा आयुष्यनो अंत आव्यो नथी पण स्नात्र मंत्रोना प्रभावथी आसन कंप थयो छे. कारण के, जो इंद्रनो अंतसमय आववानो होय तो तेना मुगट परना पुष्पो करमाइ जाय छे. अहिं इंद्रने एवुं विशेषण आप्युं छे के, पाक नामना दैत्यनी स्त्रीनी केशवेणीनो ते यमराज छे. एटले लौकिकमां एवी कथा छे के, इंद्रे पाक नामना दैत्यने मार्यो हतो, अने ते दैत्यना मरणथी तेनी स्त्रीनुं केशवेणीनुं सौभाग्य नाश पाम्युं हतुं. विधवा स्त्रीने केशवेष धारण करवो अनुचित छे. ७८

भ्रातः कालं कियंतं त्वमपि वह महीभारमागत्य दृश्यां
दृष्ट्वा चैत्यस्य लक्ष्मीमहमपि सफलं जन्म किंचित्करोमि ।

एवं शेषस्य याञ्चां विरचयितुमनाः प्राहिणोत्कूर्मराजः
यत्र स्वांतःपुरस्त्रीर्जिनसविधभृतां पुत्रिकाणां मिषेण ॥ ७९ ॥

अवचूर्णिः—हे भ्रातः अत्र पृथिव्यां पातालरूपायां आगत्य कियंतं कालं त्वमपि महीभारं वह । दृश्यां दर्शनयोग्यां चैत्यलक्ष्मीं दृष्ट्वा अहमपि जन्म किंचित् सफलं करोमि । एवं अनेन प्रकारेण यत्र प्रासादे शेषस्य याञ्चां विरचयितुमनाः कूर्मराजः जिनसविधभृतां पुत्रिकाणां छलेन स्वांतःपुरस्त्रीः प्राहिणोत् । विरचयितुं मनो यस्यासौ विरचयितुमनाः । 'तुमश्चमनःकामे' इति सूत्रेण तुमो मलोपः ॥ ७९ ॥

भावार्थ—" हे भाइ, आ पातालनी पृथ्वीमां आवी तुं केटलोक वखत आ पृथ्वीना भारने वहन कर. हुं पण ते कुमारविहार चैत्यनी दर्शनीय लक्ष्मीने जोइ मारा जन्मने कांइक सफल करुं, " आ प्रमाणेनी शेषनागने विनंति करवानी इच्छवाला कूर्मराजे (काचबाए) जे प्रासादमां भगवंतनी

पासे रहेली पुतलीओने बाने पोताना अंतःपुरनी स्त्रीओने मोकली होय, तेम देखाय छे. ७९

विशेषार्थ—आ पृथ्वी नीचे शेषनाग अने कूर्म रहे छे. एवी लौकिक वार्त्ता छे, ते उपर कवि आलंकारिक भाषामां कहे छे के, कुमारविहार चैत्यनी शोभा जोवानी कूर्मने इच्छा थइ एटले तेणे ते चैत्यमां फटारूपे रहेला शेषनागने प्रार्थना करी के, 'हे भाइ, तुं पृथ्वीनो भार वहन कर एटले हुं कुमारविहार चैत्यनी शोभा जोइ मारा जन्मने सफल करुं. आवी मागणी करवाने काचबाए पोताना अंतःपुरनी स्त्रीओने प्रेरणा करी. ते स्त्रीओ प्रभुनी पासे रहेली पुतलीओने व्हाने आवेली छे. एम ग्रंथकार उत्प्रेक्षा करे छे. ते उपरथी ते चैत्यनी अद्भुत शोभा छे, एवो ध्वनि थाय छे. अने त्यां रहेली पुतलीओ अंतःपुरनी स्त्रीओना जेवी देखाय छे, एम पण सूचव्युं छे. ७९

अन्योन्यस्य प्रणोदप्रलुलितवसनाकल्पमाल्यांगरागः
सावाधं यस्य सर्वो विचरति विपुलायामवत्यां पृथिव्याम्।
अन्यस्त्रीगात्रयष्टिप्रणयभयवशाद्दूरतस्त्यक्तमार्गाः
श्राद्धैर्लोकैरबाधं कुवलयनयनाः केवलं संचरंति ॥ ८० ॥

अवचूर्णिः—यस्य प्रासादस्य विपुलायामवत्यां पृथिव्यां अन्योन्यस्य प्रणोदप्रलुलितवसनाकल्पमाल्यांगरागः सर्वो जनः सावाधं संचरति श्राद्धैः लोकैरन्यस्त्रीगात्रयष्टिप्रणयभयवशात् दूरतस्त्यक्तमार्गाः केवलं परं कुवलयनयनाः अबाधं यथास्यात्तथा संचरंति। परस्त्रीगात्रस्य प्रणयः श्लेषस्तस्य भयं तस्य वशोऽधीनता तस्मात् अन्योन्यस्य परस्परं प्रणोदः संघट्टः तेन प्रलुलितानि भ्रष्टानि यानि वसनानि वस्त्राणि आकल्पा आभरणानि माल्यं स्रक् अंगरागो विलेपनं यस्य सः। अथवा अल्पांगरागो जनविशेषणं अन्योन्यस्येति क्रियाविशेषणं ॥ ८० ॥

भावार्थ—जे कुमारविहार चैत्यनी विशाल विस्तारवाली पृथ्वी उपर

परस्पर संघट्टथी जेमना वस्त्रो, आभूषणो, माळाओ अने अंगराग घसाइ गया छे एवा सर्व पुरुषो भीडनी पीडाथी संचरे छे अने श्रावक पुरुषोए परस्त्रीना शरीरने स्पर्श थवाना भयथी जेमने मार्ग आपेलो छे, एवी स्त्रीओ फकत भीडनी पीडा वगर संचरे छे. ८०

विशेषार्थ—आ श्लोकथी ग्रंथकार ते चैत्यमां आवता स्त्री पुरुषोनी केवी भीड थाय छे, ए वात दर्शावे छे. ते चैत्यमां पुरुष वर्गने भारे मुशीबत पडती हती. तेमनी परस्पर एटलीबधी भीड थती हती के, जेने लीधे तेमना वस्त्रो, आभूषणो, माळाओ अने अंगराग भ्रष्ट थइ जता हता. मात्र स्त्री वर्गनेज ते भीडनी पीडा नडती नहती, कारण के, परस्त्रीना शरीरना स्पर्शथी भयपामी पुरुषो तेमने रस्तो करी आपता हता. आ उपरथी ते स्थळे स्वदारसंतोष व्रत वाळा घणां पवित्र श्रावको आवता, ए वात पण सू-

नैर्मल्यश्रीप्रभावप्रहसितवियतां चंद्रकांतोत्तरंग-
प्रांतानां संगमेन क्वचिदपि नितरामेकदा भग्नमौलिः ।
आकाशेऽपि प्रहारप्रतिभयतरलः कोपि यत्रोर्ध्वबाहुः
सोष्णीषः कोपि कश्चिद्विचरति सुचिरं वामनीकृत्य नेत्रम् ॥८१॥

अवचूर्णिः——यत्र प्रासादे नैर्मल्यश्रीप्रभावप्रहसितवियतां चंद्रकांतोत्तरंगप्रांतानां संगमेन श्लेषणेन क्वचिदपि नितरां एकदा भग्नमौलिः कोऽपि आकाशेऽपि प्रहारप्रतिभयतरलः ऊर्ध्वबाहुः कोपि सोष्णीषः कश्चित् नेत्रं वामनीकृत्य सुचिरं शनैः शनैः विचरति। सोष्णीषः साटोपः । नैर्मल्यस्य श्रीः तया प्रहसितानि वियंति आकाशानि यैस्तेषां द्वारि ऊर्ध्वदारूणां उत्तरंगाणाम् ॥ ८१ ॥

भावार्थ–जे चैत्यनी अंदर निर्मलताना प्रभावथी जेमणे आकाशने पण हसीकाढ्या छे एवा चंद्रकातमणीना द्वार उपरना ठजांओनी साथे कोइ ए-

कवार क्यांइक अथमावाथी जेना मस्तकमां वागेलुं छे, एवो कोइ पुरुष आ-काशमां पण जयथी चपल थइ उंचा हाथ करी चाले बे, कोइ माथे पाघमी के टोप राखे बे अने कोइ आंखोने वांकी करी हलवे हलवे चाले छे. ८१

विशेषार्थ—ते चैत्यमां आकाशथी पण वधारे निर्मल एवा चंद्रकांत मणिमय द्वारनी उपर ते मणिना बजां बे. तेनी नीचे चालतां कोइ माणसनुं कोइवार मस्तक अथमायुं अने तेथी तेने इजा थइ एटले पछी, ते माणस प्रसार थाय बे, त्यारे आकाश होय तोपण वागवाना जयथी उंचा हाथ करी चाले बे. कोइ तेवाज जयथी माथे टोपी राखे बे अने कोइ 'रखे ने वागशे' एवी धास्तीथी आंखो वांकी करी हलवे हलवे चाले बे. आ श्लोकमां कविए स्वजावोक्ति अलंकार दर्शाव्यो बे. अने चैत्यना चंद्र-

कांतमणिना द्वारनी निर्मळता दर्शावी छे के जे निर्मळता आकाशथी पण वधारे छे. ८१

अन्योन्याश्लेषिवक्षःस्थलनिबिडहतित्रुट्यदुत्कृष्टमुक्ता-
प्रालंबभ्रष्टरोचिःस्फुटमणिपटलीशर्करादंतुरायां ।
यद्भूमौ पादवेधव्यसनपरिचयादुल्लसंतो व्रजंतः
कुर्वंतीवांगभाजः प्रतिपदपतनं तांडवाडंबराणि ॥ ८२ ॥

अवचूर्णिः—अन्योन्याश्लेषिवक्षःस्थलनिबिडहतित्रुट्यदुत्कृष्टमुक्ताप्रालंबभ्रष्टरोचिःस्फुटमणिपटलीशर्करादंतुरायां यद्भूमौ पादवेधव्यसनपरिचयात् प्रतिपदपतनं यथा स्यात्तथा उल्लसंतः व्रजंतः अंगभाजः प्राणिनः तांडवाडंबराणि कुर्वंति इव । शर्कराः कर्करास्तैः दंतुरायां विषमायां । तांडवं नाट्यं । मुक्ताप्रालंबो मुक्ताहारः । प्रतिपदपतनं पादपतनं ॥ ८२ ॥

भावार्थ—परस्पर भीसाता वक्षस्थलना घाटा प्रहारथी तुटीजता

मोटा मोतीओना हारोमांथी पमीगयेला अने कांतिथी स्पष्ट देखाता मणि-ओना समूहना कांकराथी कांकरीयाळी थयेली जे चैत्यनी ज्ञूमिने विषे पगने वींधावाना फुःखना परिचयथी जबलता चालता एवा लोको पगले पगले पमी जाणे नृत्यना आमंबर करता होय तेवा देखाय बे. ८२

विशेषार्थ—ते कुमारविहार चैत्यना दर्शनादिकमां लोकोनी एटली-बधी ज्ञीम थाय बे के, ते लोकोनी बातीओ अथमावाथी धारण करेला मो-तीओना हारोमांथी जमेला मणिओ पडी जाय बे अने तेथी त्यांनी ज्ञूमि कांकरीआली थतां ते उपर चालता लोकोना पग वींधाय छे अने हंमेशानी ते पीमाना परिचयथी ते लोको उछलता चाले बे, एटले जाणे तेओ नृत्य करी नाटक करता होय तेवा देखाय बे. आ उपरथी ग्रंथकारे चैत्यना उत्स-वोनुं दर्शन तथा माहात्म्य दर्शाव्युं बे. ८२

मध्यं वा मंडपो वा बहिरजिरमथो नाट्यलीलागृहं वा
यत्र स्थानं न किंचित्प्रसभमसुमतां यन्न रुद्धं सहस्रैः ।
तीव्रांशुग्रावबेदीतलमनलकणव्रातसंपातदुस्थै-
र्दूरस्थैर्वीक्ष्यमाणं पुनरहनि जनैः शून्यपार्श्वं सदैव ॥ ८३ ॥

अवचूर्णिः—यत्र प्रासादे मध्यं वा अथवा मंडपः अथो बहिरजिरं वा अथवा नाट्यलीलागृहं तत् किंचित् स्थानं नास्ति यत् प्रसज्जं हठात् असुमतां सहस्रैः निरुद्धं व्याप्तं न । पुनः अहनि दिने सदैव अनलकणव्रातसंपातदुःस्थितैः दुःखितैः दूरस्थैः जनैः वीक्ष्यमाणं तीव्रांशुग्रावबेदीतलं शून्यपार्श्वं अस्तीत्यध्याहार्यं । तीव्रांशुः सूर्यः तस्य ग्रावाणः ॥ ८३ ॥

भावार्थ—जे कुमारविहार चैत्यनो मध्य भाग, मंडप, बाहेरनुं आंगणुं अने नाट्य लीलानुं घर—के कोइ बीजुं एवुं स्थान न हतुं के जे हजारो मनुष्योए हठथी रोकेलुं न होय ? अर्थात् तेना बधा स्थानो माणसोथी

भरपूर हता. मात्र सूर्यकांतमणिनी वेदीनुं तळीयुं के जे दिवसना भागमां ते-
मांथी नीकळता अग्निना तणखाना समूह पडवाथी दुःखी थइ दूर रहेला
लोकोए जोयेलुं होवाथी सदाकाळ शून्य रहेलुं हतुं. ८३

विशेषार्थ—कुमारविहार चैत्यनी अंदर हजारो माणसो पूजन अने द-
र्शन करवाने आवता हता के, जेथी करीने तेनो मध्य भाग, मंडप, बाहेरना
आंगणां, अने नाट्यगृह वगेरे बधां स्थानो तेओनाथी भरपूर थइ जतां ह-
तां. कोइ पण तेनुं स्थान माणस वगरनुं न हतुं, पण एक सूर्यकांतमणिनुं
रचेलुं वेदीनुं तळीयुं फकत शून्य देखातुं हतुं. कारणके, दिवसना भागमां
सूर्यना तेजथी ते तळीयामांथी अग्निना तणखा नीकळता, एटले दाझवाना
भयथी लोको तेनाथी दूर रहेता हता. आ उपरथी ते चैत्यमां कोइ स्थाने
सूर्यकांतमणि पण जडेला हता, एम दर्शाव्युं छे. ८३

गंधारग्रामगीतध्वनिभिरविरतं यत्र तारं स्पृशद्भिः
श्रद्धाव्यस्तव्यवस्थैरहमहमिकया मंगलोल्लूलघोषैः ।
ध्वस्तेऽन्योन्यं विशेषे श्रुतिसदसि सुधावर्षिणि व्यर्थयंत्यः
किंनर्यो देवताभ्यः सततगुरुरुषो देवताःकिंनरीभ्यः ॥ ८४ ॥

अवचूर्णिः—यत्र प्रासादे अविरतं निरंतरं तारं स्पृशद्भिः गंधारग्रामगीतध्वनिभिः अहमहमिकया श्रद्धाव्यस्तव्यवस्थैः मंगलोल्लूलघोषैः सुधावर्षिणि श्रुतिसदसि अन्योन्यं विशेषे ध्वस्ते सति सततगुरुरुषः किंनर्यः देवताभ्यः किंनरीभ्यः सततगुरुरुषः देवताः व्यर्थयंत्यः संति । तारं स्वरविशेषं । गंधारग्रामौ रागौ । श्रद्धया वासनया व्यस्ता क्षिप्ता व्यवस्था क्रमो यैः । अहंपूर्वं अहंपूर्वमिति अहमहमिका । उल्लूलो मंगलध्वनिः ॥ ८४ ॥

भावार्थ—जे कुमारविहार चैत्यनी अंदर किंनरीओना तार ध्वनिने स्पर्श करनारा गंधार ग्राम रागना अवाजोथी 'हुं प्हेली हुं प्हेली' एम

चडसाचडसीथी' वासनावडे करमने तोडी थता एवा देवीओना मंगल घोषथी अमृतने वर्षावनारा श्रुति—श्रवणगृहमां परस्पर एकबीजाना ऊंचा गायननी तफावत जडी जवाथी किंनरनी स्त्रीओ देवीओ उपर भारे रोष करी तेमना गायनने व्यर्थ करती हती अने देवीओ किंनरनी स्त्रीओ उपर ज्यारे रोष करी तेमना गायनने व्यर्थ करती हती. ८४

विशेषार्थ—कुमारविहार चैत्यनी अंदर आवेला संगीतगृहमां किंनरनी स्त्रीओ गीतध्वनि अने देवीओ मंगलध्वनि करवा आवे छे. ते वखते तेमनी वच्चे 'हुं प्हेली गाउं, हुं प्हेली गाउं' एवी चडसाचडसी थवाथी तेओ परस्पर एटलाबधा ध्वनिओ करे छे के, तेमनी वच्चे रागनी उच्चतानो तफावत जणातो नथी, तेथी किंनरनी स्त्रीओ देवीओ तरफ मोटो रोष करी तेमना मंगलगीतने व्यर्थ करे छे अने देवीओ किंनरनी स्त्रीओनीपर रोष

करी तेमना संगीतने व्यर्थ करे छे. आ उपरथी ते चैत्यमां किंनरनी स्त्रीओ अने देवीओना नित्ये उंचा संगीत तथा मंगलध्वनिओ थाय छे, एम दर्शाव्युं छे. ८४

अश्मानस्तीव्ररश्मेर्घनतुहिनभरं संहरंतः सहस्ये
कुर्वंतो यत्र धूपज्वलनमुपरतक्लेशमुच्चैः प्रशस्याः ।
द्वेषाश्च च्छिद्रयंतः शिखिकणनिकरैश्चीनचीरावचूलान्
शैलूषाणां कथंचिज्जनजनितमुदं विक्षिपंतश्च रंगं ॥ ८५ ॥

अवचूर्णिः—यत्र प्रासादे सहस्ये पौषमासि घनतुहिनभरं संहरंतः उपरतक्लेशं यथा स्यात्तथा धूपज्वलनं उच्चैः कुर्वंतः । प्रशस्याः तीव्ररश्मेः अश्मानः चपुनः शिखिकणनिकरैः शैलूषाणां चीनचीराणां अवचूलान् छिद्रयंतः चपुनः कथंचिज्जनजनितमुदं रंगं विक्षिपंतः द्वेष्याः संतीत्यध्याहारः । शैलूषाः नटा इति भरतनाट्याचार्यः । चीनचीरं विदेशीयवस्त्रं तस्य चूलाश्चरणाः तेषां अवचूलाः

प्रदेशाः तान् । द्वेष्या द्विष्टाः एतावता यत्र प्रासादे मित्राणि दुर्जनाश्च संति ॥ ८५ ॥

भावार्थ——जे कुमारविहार चैत्यमां पोषमासनी अंदर सूर्यकांतमणिओ बरफना समूहने तोडी क्लेशने समाववाने धूपने ऊंचे प्रकारे प्रज्वलित करे छे, तेथी ते प्रशंसा करवा योग्य थाय छे अने तेज पाछा पोतानामांथी नीकळता अग्निना तणखाना समूहथी नट लोकोना चीनाइ वस्त्रोना छेडाने दझामी छिद्रवाळा करवाथी लोकोने हास्य उत्पन्न करावी रंगभूमिमां विक्षेप करे छे, तेथी ते द्वेष करवा लायक थाय छे. ८५

विशेषार्थ——ते कुमारविहार चैत्यनी अंदर आवेला सूर्यकांतमणिओ पोष मासमां केवा बने छे ? ते विषे ग्रंथकार चमत्कारी रीते वर्णन आपे छे. ते सूर्यकांतमणिओ त्यां मित्र अने शत्रु——बंनेनुं काम करे छे. ज्यारे ते बरफने तोडी, शीतना क्लेशने शमाववाने धूप प्रज्वलित करे छे, त्यारे ते मित्र-

ना जेवुं काम करे छे. अने ज्यारे तेमनामांथी अग्निना तणखा नीकळवाथी त्यां नाटक करनारा पात्रोना ऊंची जातनां चीनाइ वस्त्रने दाझी काणां पाडे छे अने तेथी लोकोने हास्य आवे एवी रीते रंग भूमिमां विक्षेप करे छे, त्यारे तेओ शत्रुना जेवुं काम करे छे. आ उपरथी ते चैत्यनी अंदर सूर्यकांत-मणिनी अने नाटकनी शोभा दर्शावी छे. ८५

गृह्णीध्वं पारिजातप्रभवसुमनसो मानसीयैः पयोभिः
कुंभानापूरयध्वं कुरुत करिपतेः कल्पनां किंचिदग्र्याम्।
पौलोमि क्षिप्रमेहि प्रचलत सबला लोकपालाः पुरस्ता-
दित्थं यस्मिन् यियासोरभसविकसिताः स्वर्गनाथस्य वाचाः ॥८६॥

अवचूर्णिः—पारिजातप्रभवसुमनसः स्त्रीलिंगः गृह्णीध्वं, मानसीयैः पयोभिः कुंभान् कल-

शान् आपूरयध्वं, करिपतेरैरावतस्य कांचित् अपूर्वां अग्र्यां प्रधानां कल्पनां रचनां कुरुत, हे पौलोमि त्वं क्षिप्रं एहि, सबला लोकपाला यूयं पुरस्तात् अग्रे प्रचलत इत्थं अनेन प्रकारेण यस्मिन् प्रासादे यियासोः गंतुमिच्छोः स्वर्गनाथस्य इंद्रस्य रन्नसविसकिता वाचाः संति। पौलोमी इंद्राणी। रन्नसा पूर्वापर्यविचाररहित्येन विकसिता उत्फुल्लाः। वाचाः वचनानि। सुमनस् शब्दः स्त्रीलिंगो बहुवचनांतः॥ ८६ ॥

जावार्थ—जे कुमारविहार चैत्यमां जवानी इच्छा करता एवा इंद्रनां वचनो आ प्रमाणे पूर्वापर विचार कर्या वगर प्रगट थाय छे—“हे देवताओ, पारिजातना पुष्पो ग्रहण करो, मानस सरोवरना जलथी कलशो जरो, ऐरावत हाथीनी उपर कोइ अपूर्व उत्तम रचना करो. हे इंद्राणि, जलदी चाल. हे लोकपालो, तमे सैन्य सहित आगल चालो. ८६

विशेषार्थ—आ श्लोकथी ग्रंथकारे ‘ए चैत्यमां इंद्र पण पूजा कर-

वानी इच्छाथी तैयारी करे छे एम दर्शाव्युं छे. अने लोकपाल अने इंद्राणी साथे आवेलो इंद्र ते चैत्यनायक श्री पार्श्वनाथ प्रभुनी पारिजातना पुष्पोथी अने मानस सरोवरना जल कलशोथी पूजा करवानी इच्छा राखे छे अने तेने माटे तैयारी करे छे. ८६

हस्तोत्संगोपविष्टस्फुटमणिमुकुटज्योतिरुद्योतिताशा–
मात्मीयां रत्नभित्तावधिरजनि तनुं बिंबितां वीक्ष्य यस्मिन् ।
एतैत क्षिप्रमंतर्भवनमभिनवः कोऽप्यदृष्टप्रविष्टः
पूत्कुर्वन्नित्थमुच्चैः क्रमयति निकरं पूजको यामिकानाम् ॥८७॥

अवचूर्णिः—अधिरजनि रजनीमध्ये हस्तोत्संगोपविष्टस्फुटमणिमुकुटज्योतिरुद्योतिताशां रत्नभित्तौ प्रतिबिंबितां आत्मीयां तनुं वीक्ष्य अंतर्भवनं भवनमध्ये अभिनवः कोपि अदृष्टः क्षिप्रं शी-

घं एत एत आगच्छत आगच्छत इत्थं अनेन प्रकारेण उच्चैरतिशयेन पूत्कुर्वन् पोकारयन् पूजकः पूजाकारकः यामिकानां प्राहरिकाणां निकरं क्लमयति खेदयति । हस्तयोः उत्संगो मध्यं तत्र उपविष्टाः स्थापिताः स्फुटाः प्रकटाः ये मणयः तेषां ज्योतींषि कांतयः ताभिः उद्योतिता आशा यया तां ॥ ८७ ॥

भावार्थ—जे चैत्यनी अंदर रात्रे पोताना हाथना मध्य भागे राखेला प्रभुना स्पष्ट मणिमय मुगट हाथना मध्यमां पूजारीयोए दीधेला तेनी कांतिओथी दिशाओने उद्योत करनारी पोतानी मूर्त्तिनुं रत्नमय दीवालनी अंदर प्रतिबिंब पम्हेलुं जोइ ते चैत्यनो पूजारी (गोठी) " चालो, चालो, आ भवननी अंदर कोइ नवो माणस (चोर) अदृष्ट पेशी गयो छे " एम उंचे स्वरे पोकार करी करी पेहेरागीरोना समूहने कंटालो आपे छे. ८७

विशेषार्थ—ग्रंथकारे आ श्लोकथी भ्रांतिमान् अलंकार दर्शावी ते चैत्यनी मणिमय दीवालनी शोभा वर्णवी छे. अने ते चैत्यना पूजारी (गो-

ઠી)ની પણ ભ્રાંતિ સૂચવેલી છે. ચૈત્યપૂજકના હાથમાં રહેલા પ્રભુના મણિમય મુગટની કાંતિથી દિશાઓને પ્રકાશિત કરતી તે પૂજકની મૂર્ત્તિ દિવાલમાં પડવાથી તેને ' કોઇ બીજો માણસ અંદર પેશી ગયો છે, ' એવું જાણી તે પેહેરેગીરોને પોકાર કરી બોલાવે છે. પેહેરેગીરો આવી તપાસ કરે છે, ત્યાં તે વાત ભ્રાંતિવાળી નીકળે છે. તેવી રીતે ઘણીવાર ભ્રમથી પૂજારી પેહેરાગીરોને બોલાવ્યા કરે છે અને તેથી તેમને કંટાળો ઉપજાવે છે. ૮૭

શૃંગસ્થેભ્યો હરિભ્યः પ્રતિભયવશતः કાતરः સ્વःકરેણુ—
નશ્યન્ દૈત્યાંગનાનાં મુખકમલવનં નેષ્યતે હાસ્યલક્ષ્મીમ્ ।
તસ્માદારોઢુમુચ્ચૈःશ્રવસિ હયપતૌ સાંપ્રતં સાંપ્રતં વः
પૌલોમી શક્રમેવં નિગદતિ ચલિતં યસ્ય યાત્રોત્સવાય ॥૮૮॥

अवचूर्णिः—शृंगस्थेभ्यः हरिभ्यः प्रतिभयवशातः कातरो नश्यन् स्वःकरेणुः ऐरावतगजः दैत्यांगनानां मुखकमलवनं हास्यलक्ष्मीं नेष्यते प्रापयिष्यते तस्मात्कारणात् वः युष्माकं हयपतौ उच्चैःश्रवसि आरोढुं चटितुं सांप्रतमिदानीं सांप्रतं युक्तं एवमनेन प्रकारेण पौलोमी इंद्राणी यस्य प्रायादस्य यात्रोत्सवाय चलितं शक्रं प्रति निगदति वदति । प्रतीत्यनुक्तमपि ग्राह्यं । णीधातुः पाठे धात्वादानींभविष्यतीति ष्यते गुणे च नेष्यते द्विकर्मकः । उच्चैःश्रवा इंद्रहयः ॥ ८८ ॥

नावार्थ—जे कुमारविहार चैत्य प्रत्ये चालेला इंद्रने इंद्राणी आ प्रमाणे कहे छे—हे स्वामी, ते चैत्यना शिखर उपर प्रतिमा रूप रहेला सिंहोना नयथी तमारो ऐरावत गजेंद्र दैत्योनी स्त्रीओना मुख रूप कमलोना वनने हास्यनी शोनाने पमामशे, तेथी हाल तमारे उच्चैः श्रवा नामना अश्वपति उपर चमवुं योग्य छे." ८१

विशेषार्थ—कुमारविहार चैत्यनी यात्रा करवाने तैयार थइ चालता

इंद्रने इंद्राणी कहे छे के तमे ऐरावत हाथी उपर चढीने त्यां जशो नहीं, कारण के, ते चैत्यना शिखर उपर सिंहनी प्रतिमाओ छे, तेथी तमारो हाथी भय पामी भड़कीने नाशी जशे, ते जोइ दैत्योनी स्त्रीओने तमारुं हसवुं आवशे—अर्थात् तेओ तमारी मश्करी करशे, माटे तमारे उच्चैः श्रवा घोडा उपर बेशीने त्यां जवुं योग्य छे. आ उपरथी ते चैत्यना शिखर उपर रचेला सिंहो प्रतिमारूपे छे, ते छतां ते साचा सिंहो होय तेवा देखाय छे ; एम चैत्यनी उंची शिल्पकला कविए दर्शावी छे. ८८

राकाभर्त्तुर्मयूखैरुपचयमाधिकं लंभिते यस्य चंच-
च्चंद्राश्मस्तंभभित्तिप्रभवनवरुचां कुट्टिमे व्योमभाजि ।
विश्राम्यंतो विहंगा हिमगिरिशिखरोत्संगवेदीभ्रमेण

क्षोणीपीठे निनादैस्तुमुलितवियतो लोलपक्षाः पतंति ॥८९॥

अवचूर्णिः—यस्य प्रासादस्य राकाजर्त्तुः पूर्णिमेंदोः मयूखैः किरणैः उपचयं वृद्धिं अधिकं यथास्यात्तथा लंजिते प्रापिते व्योमजाजि चंचच्चंद्राश्मस्तंभजित्तिप्रजवनवरुचां कुट्टिमे हिमगिरिशिखरोत्संगवेदीभ्रमेण विश्राम्यंतः लोलपक्षाः विहंगाः निनादै रावैः तुमुलितवियतः कोलाहलितव्योमानः क्षोणीपीठे पतंति । चंचच्चंद्राश्मानः चंद्रकांताः तेषां स्तंभा जित्तयः ताज्यः प्रजवा नवीना रुचः तासां । कुट्टिमे बद्धजूमिके ॥ ७ए ॥

जावार्थ—जे कुमारविहार चैत्यनी चलकता चंद्रकातमणिना स्तंजो तथा दीवालोमांथी उत्पन्न थती नवीन कांतिओथी आकाशना जागमां थयेलो जमीननो देखाव पूर्णिमाना चंद्रना किरणोथी अधिक वृद्धिने पामे छे, ते उपर पक्षीओ हिमालय पर्वतना शिखरना मध्य जागनी वेदिकाना भ्रमथी विश्रांत थवा जाय छे, तेवामां तेओ शब्दोथी आकाशने गजावतां अने

पांखोने तरफमावतां पृथ्वी तल उपर पमे छे ७७

विशेषार्थ—आ श्लोकमां कवि भ्रांतिमान् अलंकारथी चैत्यनी चंद्र-कांतमणिमय शोभानुं चमत्कारी वर्णन करे छे. ते चैत्यनी अंदर चारे तरफ चंद्रकांतमणिओ जमेला छे; ज्यारे पूर्णचंद्रनो प्रकाश तेनी उपर पमे छे, ते वखते ते मणिओनी कांतिमां वधारो थाय छे, तेने लइने आकाशमां जमी-ननो देखाव थइ रहे छे. आथी उंचे उमता पक्षीओने हिमालय पर्वतना शिखरनी वेदीनी भ्रांति थाय छे, तेथी तेओ ते उपर बेसवा जाय छे, ते-वामां तेओ शब्दोथी आकाशने गजवता अने पोतानी पांखो फफमावता नीं-चे पृथ्वी उपर पमे छे. ७९

प्रतिरजनि निशीथे यत्र नेत्रैकलेह्यान्

त्रिदशपुरपुरंध्रीरासकान् द्रष्टुकामाः ।
सततमधिवसंत्यो यामिकानां कुटीरे
नगरहरिणनेत्राः प्रेयसः खेदयंति ॥ ९० ॥

अवचूर्णिः—यत्र प्रासादे निशीथे मध्यरात्रे प्रतिरजनि नेत्रैकलेह्यान् त्रिदशपतिपुरंध्रीरासकान् द्रष्टुकामाः यामिकानां कुटीरे तृणौकसि सततं अधिवसंत्यः नगरहरिणनेत्राः प्रेयसो वल्लभान् खेदयंति उच्चाटयंति ॥ ९० ॥

भावार्थ—जे कुमारविहार चैत्यनी अंदर प्रत्येक अर्धरात्रिए नेत्रोथी नीरखवा लायक एवा इंद्रोनी स्त्रीओना रासडाने जोवानी इच्छाथी पेहेरेगीरोनी पर्णकुटीमां सतत नीवास करी रहेती नगरनी स्त्रीओ पोताना प्रिय पतिओने उचाट करावे छे. ९०

विशेषार्थ—ते कुमारविहार चैत्यनी अंदर दरेक अर्ध रात्रे इंद्रोनी स्त्री-

ओ–देवीओ रासडा लेवाने आवे छे. ते रासडा जोवाने माटे नगरनी स्त्रीओ आवी त्यां रहेला पेहेरागीरोनी झुपडीओमां वास करेछे, तेमने शोधवाने माटे तेमना पतिओ घणां उचाट करतां चारे तरफ भम्या करे छे. आथी ग्रंथकारे 'ते प्रभाविक चैत्यमां दररोज अर्ध रात्रे देवीओ रासडा लेवाने आवे छे,' एम जणाव्युं छे. ७०

लब्ध्वा साम्राज्यलक्ष्मीं किमपि कलयतोऽहंकृतिं शीतरश्मे–
रुन्मत्तैः कांतिकांडैः स्फटिकजयितयाछन्नतां लंभितस्य ।
वक्त्राण्याशांगनानां कपिशरुचिवशात्स्रग्भिरुत्तंसयद्भिः
कुंभैर्दंडैश्च हेम्नः प्रथयति जनता यस्य राकासु सत्ताम् ॥ ९१ ॥

अवचूर्णिः—साम्राज्यलक्ष्मीं लब्ध्वा किमपि अहंकृतिं अहंकारं कलयतः शीतरश्मेः उ-

न्मत्तैः कांतिकांडैः रुचिसमूहैः स्फटिकजयितया उन्नतां लंभितस्य यस्य प्रासादस्य आशांगनानां वक्त्राणि कपिशरुचिवशात् स्रग्भिः मालाभिः उत्तंसयद्भिः भूषयद्भिः हेम्नः सुवर्णस्य कुंभैः चपुनः दंडैः राकासु सत्तां सद्भावं जनता कथयति। उन्नतां आच्छादितत्वं। जनता जनसमूहः ।उन्मत्तैः अस्खलितप्रचारैः। लंभितस्य प्रापितस्येति विशेषणमपि प्रासादस्य ज्ञेयं ॥ ९१ ॥

भावार्थ—पूर्णिमानी रात्रिओमां साम्राज्यनी लक्ष्मीने प्राप्त करी स्फटिक मणिनो जय करवाथी अहंकारने पामेला चंद्रना उन्मत्त कांतिना समूहे आच्छादित करेला जे चैत्यनी सत्ताने लोको दिशारूपी स्त्रीओना मुखोने पीळी कांतिने लीधे मालाओथी विभूषित करता एवा सुवर्णना कलशोथी अने दंडोथी कहे छे. ९१

विशेषार्थ—पूर्णिमानी रात्रे चंद्र पूर्ण साम्राज्यने पामे छे; अने ते पोतानी कांतिथी चैत्यना स्फटिक मणिने जीती लेछे, एटले तेनामां अहंकार

उत्पन्न थाय छे. तेथी ते पोताना उन्मत्त एटले अस्खलितपणे प्रचार करनारा किरणोथी चैत्यनी दिशाओना मुखोने एटले अग्र भागोने व्याप्त करी चैत्यने आच्छादित करी लेछे. ते वखते चैत्य उपर रहेला सुवर्णना कलशो अने दंमोने जोइ लोको चैत्यनी सत्ताने जाणे छे, एटले 'चैत्य हैयात छे' एवुं तेमने भान थाय छे. आ उपरथी चैत्यना सुवर्ण कलशो अने ध्वजदंडोनी शोभा अति उत्तम हती, एम ग्रंथकारे दर्शावी आप्युं छे. ए१

यस्मिन् नित्यं निशीथे जिनपतिचरणांभोजपूजाविधान-
श्रद्धावर्धिष्णुहर्षात् क्रमलयविमुखान् कुर्वतस्तांडवानि ।
गीर्वाणान् द्रष्टुकामाः सविधसहचरीसंभृतोत्तालमालान्
पौराः स्वर्णोपचारैः प्रहरकमनिशं यामिकानर्थयंते ॥ ९२ ॥

अवचूर्णिः—यस्मिन् प्रासादे निशीथे मध्यरात्रे जिनपतिचरणांभोजपूजाविधानश्रद्धावर्द्धिष्णुहर्षोत्तांस्तानि नाटकानि कुर्वतः क्रमलयविमुखान् सविधसहचरीसंभृतोत्तालमालान् गीर्वाणान् दृष्टुकामाः पौराः नागरिकाः स्वर्णोपचारैः यामिकान् प्रहरकं अनिशं अर्थयंते याचंते । स्वर्णस्य उपचाराः सत्काराः तैः । क्रमः परिपाटी लयो ध्यानं तयोः विमुखाः । सविधे समिपे याः सहचर्यः सख्यः ताभिः संभृता भृता उत्तालाः फालास्तेषां माला ओघः ॥ ए१ ॥

भावार्थ—कुमारविहार चैत्यमां अर्धरात्रे पार्श्वनाथ प्रभुना चरण कमळनी पूजा करवानी श्रद्धाथी वृद्धि पामता हर्षने लइने परिपाटी तथा ध्यानथी विमुख थइ नाटक करता, अने पोतानी समीपे रहेली सहचरीओए जेमना ताळना समूहने धारण करेला छे, एवा देवताओने जोवानी इच्छा राखता नगरजनो पेहेरेगीरोने सुवर्णनो सत्कार करी जोवाना पोहोरनी मागणी करे छे. ए१

विशेषार्थ—कुमारविहार चैत्यनी अंदर अर्धरात्रे देवताओ नाटक करवा आवे छे, ते वखते तेमने पूजा करवानी एटली बधी श्रद्धा वधे छे के, जेना हर्षथी तेओ पूजानी परिपाटी तथा ध्यानथी विमुख थइ नाटक करवा मंडी जाय छे, ते वखते तेमनी सहचरी देवीओ तेमने ताळ आपे छे. आ देखाव जोवाने नगरना पुरुषोने एटली बधी इच्छा उत्पन्न थाय छे के जेथी तेओ पेहेरागीरोने सुवर्ण द्रव्यनी लांच आपी तेमनो पेहेरो लेवानी मागणी करे छे. कारणके जो तेओ पेहेरागीरोनुं काम करे तो तेमने दिव्य नाटक जोवानो लाभ मळे. ए२

यत्रालेख्यसभासु चित्ररचनासौभाग्यसंपादना–
संरंभः फलमेति शिल्पकृतिनामेकत्र भित्तौ क्वचित् ।

सांमुख्यं भजतां पुनर्मणिशिलाव्यासंगरंगात्त्विषां
बिंबोल्लासवशेन चित्रघटना भित्त्यंतराणामपि ॥ ९३ ॥

अवचूर्णिः—यत्र प्रासादे आलेख्यसभासु क्वचिदेकत्र भित्तौ शिल्पकृतिनां चित्ररचनासौभाग्यसंपादनासंरंभः फलं एति । पुनः सांमुख्यं भजतां मणिशिलाव्यासंगरंगत्त्विषां भित्त्यंतराणामपि बिंबोल्लासवशेन चित्रघटना भवेत् । शिल्पं चित्रं तस्मिनकृतिनश्चतुराः चित्रकरा इत्यर्थः । सांमुख्यं संमुखत्वं । रत्नशिलानां व्यासंगः संगः तेन रंगत्यःचलंत्यः त्विषः कांतयो येषां । भित्त्यंतराणां अन्यासां भित्तीनां । अन्या भित्तयो भित्त्यंतराणि ॥ ९३ ॥

भावार्थ—जे चैत्यनी अंदर आवेली चित्रशालाओने विषे कोइ एक भिंतनी अंदर चित्रकारोना सौभाग्य संपादननो संरंभ फलने प्राप्त करे छे, तेनी सन्मुख आवेली बीजी भींतो के जेमनी कांतिओ रत्नमयशिलाओनासंगने लइने चलायमान थयेली छे, ते पेली भींतना प्रतिबिंबना उल्लासने

लीधे तेमनी अंदर पण तेवाज चित्रनी घटना थइ जाय छे. ९३

विशेषार्थ—ग्रंथकार हवे ते चैत्यनी चित्रशालानुं वर्णन करे छे. ते चैत्यनी अंदर आवेली चित्रशालाओमां कोइ भींत उपर चित्रकारोए पोतानी कारीगरीथी कोइ एवां सुंदर चित्रो रचेलां छे के जे तेवां चित्रो बीजी भींतो उपर थइ शक्यां नथी, परंतु रत्नमय शिलाओना संगने लइने तेमनी कांतिओमां पेली सुंदर चित्रवाली भींतनुं प्रतिबिंब पडे छे, तेथी बीजी भींतोनी अंदर पण तेवीज चित्रघटना देखाय छे. ९३

भेरीभांकारपूरप्रणयमुकुरितो घोरघोरैः प्रसर्पन्
घंटाटंकारघोषैः प्रतिनदितघनैर्लंभितो मांसलत्वम् ।
उर्वीमापूर्य तूर्यध्वनिरनवरतं स्मारयन् तार्क्ष्यपक्ष–

प्रांताघातांस्त्रिसंध्यं रचयति चकितं यत्र पातालल्लोकं ॥ ९४ ॥

अवचूर्णिः—यत्र प्रासादे झेरीझांकारपूरप्रणयमुकुरितः घोरघोरैः घंटाटंकारघोषैः प्रसर्पन् प्रवर्द्धमानः प्रतिनदितघनैः मांसलत्वं पुष्टत्वं लंभितः प्रापितः अनिशं तार्क्ष्यपक्षप्रांताघातान् स्मारयन् उर्वी पृथ्वीं आपूर्य पूरयित्वा तूर्यध्वनिः वादित्रध्वनिः पातालल्लोकं त्रिसंध्यं चकितं रचयति । झेर्यो वाद्यविशेषाः तेषां झांकाराः शब्दाः तेषां पूरः समूहः तस्य प्रणयः संश्लेषः तेन मुकुरितः मुकुर आदर्शः तद्वदाचरितः प्रतिबिंबित इत्यर्थः । तार्क्ष्यो गरुडः । पन्नगास्तार्क्ष्याद्बिभ्यति इतिभावः ॥ ९४ ॥

भावार्थ—जे चैत्यनी अंदर झेरी नामना वाजाना झांकार शब्दोना समूहना स्नेहथी दर्पणनी जेम प्रतिबिंबित थयेलो अने अतिघोर घंटाओना टंकाराना घोषथी वृद्धि पामतो अने प्रतिध्वनिओना रणकाराथी पुष्ट थयेलो वाजित्रोनो ध्वनि पृथ्वीने पूरी पाताल लोकने—नागलोकने गरुड पक्षीनी पांखोना छेडाना आघातनुं स्मरण करावी भयभीत करे छे. ९४

विशेषार्थ—आ श्लोकथी कवि कुमारविहार चैत्यना वाजित्रोनी समृद्धि वर्णवे छे ते चैत्यमां झेरीना झांकारो तथा घंटाओना टकोराओ एटला बधा थाय छे, के तेना प्रतिध्वनि साथे ते ध्वनिनो अवाज पृथ्वीने पुरी पाताल सुधी पोहोछे. ते वखते पातालवासी सर्पोने गरुडनी पांखोना छेडाना आघातनुं स्मरण थाय छे, एटले तेओ जयजीत थइ जाय छे. सर्पो गरुडथी भयपामे छे, ए वात प्रसिद्ध छे. ९४

पर्वोन्मीलन्महिम्ना गुरुसरलवपुःप्रांतपीतांबरेण
स्वर्णव्यासर्पिधाम्ना कृतसततपदं केतुदंडेन मूर्ध्नि ।
अद्वैतं दैवतेषु प्रसभमभिदधत् पार्श्वनाथस्य दूरा–
दूर्ध्वीभूतांगुलीकः कर इव यदिह क्षोणिवध्वा विभाति ॥९५॥

अवचूर्णिः—इह पत्तने पर्वोन्मीलन्महिम्ना गुरुसरलवपुःप्रांतपीतांबरेण स्वर्णव्यासर्पिधाम्ना स्वर्णस्य व्यासर्पि प्रसरणशीलं धाम तेजो यस्य तेन केतुदंडेन मूर्ध्नि कृतसततपदं यच्चैत्यं क्षोणिवध्वाः पार्श्वनाथस्य दैवतेषु अद्वैतं प्रसन्नं यथास्यात्तथा अभिदधत् कथयन् दूरादूर्ध्वीकृतांगुलीकः कर इव विभाति। पर्वसु पौषे श्रीपार्श्वनाथजन्मादिकल्याणकेषु पंचपर्व्यां वा उन्मीलन् वर्द्धमानो महिमा यस्य अद्वैतं एकत्वं । गुरु महत् सरलं दीर्घं यत् वपुः तस्य प्रांताः अवयवाः तैः पीतं लक्षणया व्याप्तं अंबरं येन ॥ ९७ ॥

भावार्थ—पर्वने विषे जेनो महिमा वृद्धि पामेलो छे, मोटा अने सरल एवा शरीरना अवयवोथी जे आकाशने व्याप्त करनारो छे अने जेनुं तेज सुवर्णथी प्रसरी रहेलुं छे एवा ध्वजदंडे जेना शिखर उपर हंमेशां स्थान करेलुं छे एवुं जे कुमारविहार चैत्य "देवताओमां पार्श्वनाथ अद्वितीय छे" एम आग्रहथी कहेतो अने जेनी एक आंगली उंची करेली छे, अवो

પૃથ્વીરૂપી સ્ત્રીનો હાથ હોય, તેવું દેખાય છે. ૧૯

વિશેષાર્થ—તે કુમારવિહાર ચૈત્ય ઉપર મોટો ધ્વજદંડ હતો, તે ઉપર કવિ ઉત્પ્રેક્ષા કરે છે. પૌષમાસમાં જ્યારે પાર્શ્વ પ્રભુના જન્મ વગેરે કલ્યાણક આવે છે, ત્યારે તે ધ્વજ દંડનો મહોત્સવ થાય છે. અને તે ધ્વજદંડના અવયવો મોટા અને સરલ છે. તેથી તે આકાશમાં વ્યાપી રહેલો છે. વળી તેની ઉપર સુવર્ણ મઢેલું હોવાથી તે ઘણો તેજસ્વી દેખાય છે, આવો ધ્વજ-દંડ જેના શિખર ઉપર છે. એવા તે ચૈત્યને ઉદ્દેશીને કવિ ઉત્પ્રેક્ષા કરે છે કે, એ ધ્વજદંડવાળું ચૈત્ય પૃથ્વીરૂપી સ્ત્રીનો હાથ છે, તે એક ઉંચી આંગળી કરી લોકોને જણાવે છે કે, સર્વ દેવતાઓમાં પાર્શ્વનાથ પ્રભુ અદ્વિતીય છે, તેમના જેવો બીજો કોઇ દેવ નથી.' લોકોમાં પણ એકની સંખ્યા બતાવાને માટે હાથની એક આંગળી ઉંચી કરવાનો પ્રચાર છે. ૯૯

पश्यंस्त्यक्तनिमेषमद्भुततमांस्तांस्तान्महीमध्यगान्
भूभागानितरेतरांगघटनादुत्क्षिप्य देहः परैः ।
मर्त्यत्वेऽपि जिनप्रभाववशतः प्राप्तामरत्वः क्षितिं
पद्भ्यां कश्चिदसंस्पृशंस्तत इतो यस्यांगणे भ्राम्यति ॥ ९६ ॥

अवचूर्णिः—यस्य प्रासादस्य अंगणे त्यक्तनिमेषं यथास्यात्तथा अद्भुततमान् तान् तान् भूभागान् बहिः पश्यन् इतरेतरांगघटनात् परैः उत्क्षिप्य उत्पादितदेहः पद्भ्यां क्षितिं असंस्पृशन् मर्त्यत्वेऽपि मनुष्यत्वेऽपि जिनप्रभावतः प्राप्तामरत्वः कश्चित्पुरुषः इतस्ततो भ्राम्यति। देवोऽपि चतुरंगुलेन भुवं न स्पृशति विमानादिना उत्पादितदेहः स्यात् एतावता तिलः पतितोऽपि यत्र न माति एवंविधो जनानां संमर्दो यत्रास्तीति ॥ ९६ ॥

भावार्थ—कोइ पुरुष ते कुमारविहार चैत्यना आंगणामां बाहेरथी तेना अति अद्भुत भूमिना भागने अनिमेष दृष्टिए जोतो हतो, परस्पर

भीडमां रहेला एक बीजाना अंगनी घटनाथी बीजाओए तेना देहने उचकी लीधो एटले पृथ्वीने स्पर्श कर्या वगर आम तेम भमतो हतो, ते जाणे मनुष्यपणामां पण जिन भगवंतना प्रभावथी देवपणाने प्राप्त कर्युं होय, तेवो देखातो हतो. ९६

विशेषार्थ—आ श्लोकथी ग्रंथकारे ते चैत्यनी अंदर थती लोकोनी भारे भीड दर्शावी छे. ते चैत्यना आंगणामां कोइ पुरुष आवी तेनी रमणीय भूमिना भागने बाहेर रही एकी नजरे जोतो हतो, ते लोकनी भीडमां आ-वतां तेने बीजाओए ऊचकी लीधो हतो, तेथी पृथ्वीने अडक्या वगर आम तेम भमवा लाग्यो. ते उपर कवि उत्प्रेक्षा करे छे के, श्री जिन भगवान्‌ना प्रभावथी ते पुरुषे जाणे मनुष्यपणामां पण देवपणुं प्राप्त कर्युं होय, तेवो ते देखातो हतो देवता अनिमेष दृष्टिए (मटकुं मार्या शिवाय) जुए छे, तेम ते

પુરુષ ચૈત્ય ભૂમિના રમણીય ભાગને તેવી દૃષ્ટિથી જોતો હતો દેવતા પૃથ્વીથી ઊંચે ચાલે છે, એટલે દેવતાના ચરણ પૃથ્વીને અડકતા નથી, તેમ તે પુરુષ ભીડને લઇને બીજાઓએ ઊંચકવાથી પૃથ્વીને સ્પર્શ કર્યા વગર ભમતો હતો. આ ઉપરથી કવિએ એમ દર્શાવ્યું છે કે, તે ચૈત્યમાં એટલી બધી ભીડ હતી કે, જો તલનો દાણો પણ નાખ્યો હોય તો તે જમીન ઉપર પડતો ન હતો. ૯૬

भाग्यप्रागल्भ्यलभ्यां किमपरममरैरप्यसाध्यामवाच्यां
अश्रद्धेयामशेषत्रिजगदभिनुतां यस्य सौंदर्यलक्ष्मीं ।
निध्यायान्नेर्निमेषं पुलकघनवपुर्लोचनानां सहस्रम् ।
स्पष्टं तुष्टाव सृष्टिं क्षितिमधिवसतां मानवानां च शक्रः ।।९७।।

અવચૂર્ણિઃ—યસ્ય પ્રાસાદસ્ય ભાગ્યપ્રાગલ્ભ્યલભ્યાં અવાચ્યાં અશ્રદ્ધેયાં અશેષત્રિજગદ-

भिनुतां अपरं किं अमरैरपि असाध्यां निष्पादयितुमशक्यां सौंदर्य सौभाग्यं तस्य लक्ष्मीं निर्निमेषं निर्ध्यायन् पुलकघनवपुः शक्रः स्पष्टं लोचनानां सहस्रं च पुनः क्षितिं पृथ्वीं अधि मध्यं अधिवसतां मानवानां सृष्टिं सर्जनं तुष्टाव स्तौतिस्म । अवाच्यां वक्तुमशक्यां अश्रद्धेयां श्रद्धातुमयोग्यां ॥ ८१ ॥

भावार्थ—मोटा भाग्यथी लभ्य थाय तेवी, वचनथी न कही शकाय तेवी, श्रद्धा करवाने अयोग्य, सर्व त्रण जगतना लोकोए स्तवेली, वधारे शुं कहेवुं, देवताओथी पण न करी शकाय तेवी जे कुमारविहार चैत्यना सौंदर्यनी लक्ष्मीने अनिमेष दृष्टिए नीरखतो एवो इंद्र शरीरने रोमांचित करी पोताना हजार नेत्रोने अने पृथ्वीपर रहेनारा मनुष्योनी सृष्टिने स्पष्ट रीते स्तवतो हतो. ८१

विशेषार्थ—कुमारविहार चैत्यनी घणां भाग्यथी लभ्य, अनिर्वचनीय, अश्रद्धेय अने त्रण जगतना लोकोए स्तवेली सौंदर्य लक्ष्मी जोइ इंद्रना शरी-

रमां रोमांच थइ जाय छे अने ते वखते ते पोताना हजार नेत्रोनी अने मानवसृष्टिनी त्यारे प्रशंसा करे छे. कारण के, तेना हजार नेत्रो आ चैत्यना सौंदर्यने जोवामां वधारे उपयोगी थाय. अने आ पृथ्वी उपर वसता लोकोने पण आ चैत्यना दर्शननो लाभ मळे छे. आ उपरथी ग्रंथकारे दर्शाव्युं छे के, ते चैत्यनी शोभा एटलीबधी उत्तम हती के, जेने जोइ देवताओनो स्वामी इंद्र पण चकित थतो हतो. ९७

यस्य ध्वजान् गणयितुं कनकावलीढान्
ऊर्ध्वं शिरोधिमधिकं पथि कुर्वतीनाम् ।
कुंभाः कुरंगकदृशां शिरसः पतंतो
यूनां चिरं विपणिनां जनयंति हास्यम् ॥ ९८ ॥

अवचूर्णिः—यस्य प्रासादस्य कनकावल्लीढान् ध्वजान् गणयितुं संख्यातुं पथि मार्गे अधिकं ऊर्ध्वं शिरोधिं कुर्वतीनां कुरंगकदृशां शिरसः पतंतः कुंभाः विपणिनां हट्टवणिजां यूनां तरुणानां चिरं चिरकालं हास्यं जनयंति। कनकावल्लीढान् कनकदंडलग्नान्। शिरोधिं ग्रीवां शिरसः मस्तकात्। कुंभाः पानीयघटाः ॥ ९८ ॥

भावार्थ—जे कुमारविहार चैत्यना सुवर्णथी जडेला ध्वजदंडो गणवाने पोतानी डोक वधारे उंची करती एवी नगरनी स्त्रीओना मस्तक उपरथी रस्तामां पडी जता एवा घडाओ बजारना तरुण वेपारीओने हास्य उत्पन्न करता हता. ९८

विशेषार्थ—रस्तामां जल भरी चाली जती नगरनी स्त्रीओ ते चैत्यना सुवर्णमय ध्वज दंडोने उंची डोक करी गणती हती, ते वखते वधारे डोक उंची थवाथी तेमना मस्तक उपरथी पाणीना घडाओ पडीजता हता, ते जो-

इ बजारना जुवान पुरुषो हस्ता हता. आ उपरथी कविए ते चैत्यमां असं-
ख्य सुवर्णना ध्वजदंडो हता, एम दर्शाव्युं छे. ९८

यस्योत्तुंगविटंकलीढवियतः पातुं श्रियं पेशलां
दूरोत्तानितकंधरं निदधतां बद्धानुबंधा दृशः ।
पौराणामनवेक्षणे मिलदुरःसंघट्टबद्धक्रुधा-
मन्योन्यं नृपवर्त्मनि प्रतिकलं कोलाहलं जायते ॥ ९९ ॥

अवचूर्णिः—उत्तुंगविटंकलीढवियतः यस्य प्रासादस्य पेशलां मनोज्ञां श्रियं पातुं दृष्टुं दूरोत्तानितकंधरं दूरं उत्तानिता ऊर्ध्वं कृता कंधरा ग्रीवा यत्र क्रियाविशेषणमेतत् दूरोत्तानितकंधरं यथास्यात्तथा बद्धानुबंधा दृशः निदधतां धरतां मिलदुरःसंघट्टबद्धक्रुधां पौराणां नागरिकाणां अनवेक्षणेऽनवलोकने नृपवर्त्मनि अन्योन्यं परस्परं प्रतिकलं निरंतरं कोलाहलं कलकलो जायते वर्त्तते । बद्धः अनुबंध आदरो याभिस्ताः बद्धानुबंधा इतिदृग् विशेषणं । कपोतपाली विटंकः तेन लीढं व्याप्तं वियत् आ-

काशं येन तत् ॥ ९९ ॥

भावार्थ—ऊंचा *विटंकथी आकाशने व्याप्त करी रहेला जे चैत्यनी सुंदर शोभा जोवाने ऊंची मोक करी आदरवाळी दृष्टिओने धारण करता नगरना लोको एक बीजाने न जोइ शकवाथी अने परस्पर गातीओना संघट्टने लइने क्रोध उत्पन्न थवाने लीधे राजमार्गनी अंदर तेमनो कोलाहल निरंतर थया करे छे. ९९

विशेषार्थ—जाहेर रस्तानी अंदर चालता लोको उंची डोके करी कुमारविहार चैत्यनी शोभाने जोतां परस्पर जोइ शकता नथी, तेम वली परस्पर गातीओना दबावाथी तेमने क्रोध उत्पन्न थाय छे. तेथी लोकोनो

---

* વિટંક શબ્દનો અર્થ છજાં થાય છે, જેની ઉપર પારેવાંઓ બેસે છે તે. તેનું બીજું નામ 'કપોતપાલી' કહેવાય છે.

मोटो कोलाहल थइ पडे छे. आथी चैत्यनी सुंदर शोभानो उत्कर्ष ग्रंथकारे दर्शाव्यो छे. ९९

दिक्चक्रचुंबिभिरुदंशुशशांककांत-
भित्तित्विषां पिहितपीठतले प्रतानैः ।
व्योमस्थमेतदिति बुद्धिरुदेति यत्र
देशांतरादुपयतः सततं जनस्य ॥ १०० ॥

अवचूर्णिः—उदंशुशशांककांतभित्तित्विषां दिक्चक्रचुंबिभिः प्रतानैः समूहैः पिहितपीठतले यत्र प्रासादे देशांतरात् उपयतः आगच्छतो जनस्य व्योमस्थमेतत् आकाशस्थं इति बुद्धिः सततमुदेति उत्पद्यते । पिहितं आच्छादितं पीठतलं धराबंधो यस्य तस्मिन् प्रासादविशेषणं ॥ १०० ॥

भावार्थ—प्रसरता किरणोवाळा चंद्रकांतमणिओनी दीवालोनी कां-

तिओना दिशाओना चक्रने व्याप्त करनारा समूह वमे जेनुं पीठतल ढंकाइ गयेल छे एवा ते प्रासादने विषे हंमेशां देशांतरथी आवता लोकोने " आ चैत्य आकाशमां रह्युं छे, ' एवी बुद्धि उत्पन्न थाय छे. १००

विशेषार्थ—आ श्लोकथी कविए ते चैत्यनी विश्वमां विख्याति दर्शावी छे. देशांतरना घणा लोको ते चैत्यनी यात्रा करवाने आवे छे अने ते अजाण्या लोको ज्यारे तेने प्रथम अवलोके छे, ते वखते ते चैत्यमां रहेला चंद्रकांतमणिओनी कांतिनो पुंज तेनी आसपासनी दिशाओमां एटलोबधो व्यापी जाय छे, के जेथी ते प्रासादनुं पीठतल ढंकाइ जाय छे तेथी तेओ ते चैत्यने आकाशमां रहेलुं जाणे छे. १००

शेषाहेः शितयः फणामणिभुवः शोणा जिनांगोद्भवाः ।

श्वेताः कांचनकल्पितांगदरुहः पीताः प्रभाराशयः ।
नित्यान् यत्र विचित्रवर्णसुभगान् नेत्रैकगम्यस्थितीन्
बाह्याभ्यंतरमंडपेषु तरलांश्चंद्रोदयान् कुर्वते ॥ १०१ ॥

अवचूर्णिः—यत्र प्रासादे बाह्याभ्यंतरमंडपेषु शेषाहेः शितयः फणिमणिप्रभवः शोणा जिनांगोद्भवाः श्वेताः कांचनकल्पितांगदरुहः पीताः प्रभाराशयः प्रभासमूहाः विचित्रवर्णसुभगान् नेत्रैकगम्यस्थितीन् नेत्राणां एका गम्या द्रष्टुं योग्या स्थितिर्येषां चंद्रोदयानां तान् नेत्रैकगम्यस्थितीन् नित्यान् अविनश्वरान् तरलान् चपलान् चंद्रोदयान् कुर्वते । नीलं कृष्णमेकमिति न्यायात् पंचवर्णाः प्रभाराशय इति गम्यम् ॥ १०१ ॥

भावार्थ—जे चैत्यनी अंदर बाहेरना अने अंदरना मंडपोने विषे नित्ये रहेला चंदरवाने शेषनागनी नीली, तेनी फणाना मणिनी राती, प्रभुना अंगनी धोली अने प्रभुए धरेला सुवर्णना बाजुबंधनी पीली एवी कांतिओना

समूह नित्य, विचित्रवर्णोथी सुंदर, नेत्रोने दर्शनीय स्थितिवाळा अने चपळ करे छे. १०१

विशेषार्थ—आ काव्यथी ग्रंथकार चैत्यना बाहेर अने अंदरना मंरूपोने विषे बांधेला चंदरवानुं चमत्कारी रीते वर्णन करे छे. प्रभुनी प्रतिमाने विषे पंचवर्णी कांति रहेली छे, एटले प्रभुना मस्तकपर रहेला शेषनागनी नीलकांति छे, शेषनागनी फणाना मणिनी राती कांति छे, प्रभुना अंगनी श्वेत कांति छे अने प्रभुए धारण करेला सुवर्णना बाजुबंधनी पीली कांति छे —ए पंचवर्णी कांतिने लइने त्यां बांधेला चंदरवाओ पण पंचवर्णी थवाथी नेत्रोने जोवा लायक बने छे, ते साथे ते चपळ देखाय छे. आथी ग्रंथकारे प्रभुनी प्रतिमाना सौंदर्यनुं दिग्दर्शन कराव्युं छे. नील अने श्याम एक गणाय छे, तेथी तेने भिन्न गणवाथी पंचवर्ण थाय छे. १०१

चंचन्नक्षत्रराशिग्रहनिकरपरिक्षिप्तपर्यंकभूमि-
र्दंडेन स्वर्णधाम्ना परिकरितवपुर्मूर्द्धलब्धांबरेण ।
मुक्तादामावचूलस्थपुटितविकटप्रांतकोटेर्निशीथे
श्वेतच्छत्रस्य लक्ष्मीं कलयति निखिलां यत्र राकाशशांकः ॥१०२॥

अवचूर्णिः—यत्र प्रासादे निशीथे चंचन्नक्षत्रराशिग्रहनिकरपरिक्षिप्तपर्यंकभूमिः स्वर्णधाम्ना ऊर्ध्वलब्धांबरेण दंडेन परिकरितवपुः राकाशशांकः पूर्णिमाचंद्रः मुक्तादामानि मुक्ताहाराः तेषां अवचूलाः गुच्छाः तैः स्थपुटिता विषमोन्नताः विकटा विस्तीर्णाः प्रांता अवयवास्तेषां कोटयो यस्य तस्य श्वेतच्छत्रस्य निखिलां लक्ष्मीं कलयति । परिक्षिप्ता व्याप्ता । पर्यंकभूमिः परिसरभूमिः । मूर्द्धनि मस्तके लब्धं प्राप्तं अंबरं आकाशं वस्त्रं वा येन तेन । परिकरितं विष्टं वपुर्यस्य सः ॥ १०२ ॥

भावार्थः—जे चैत्यनी अंदर चळकता नक्षत्रो, राशिओ अने ग्रहोना समूहथी जेणे आसपासनी भूमिने व्याप्त करेली छे अने सुवर्णना तेजवाळा

अने मस्तक उपर अंबर (आकाश पक्षे वस्त्र) ने प्राप्त करनारा दंडथी जेनुं शरीर व्याप्त थयेलुं छे एवो पूर्णिमानो चंद्र मोतीओना हारना गुच्छोथी विषम अने उंचा विस्तारवाळा प्रांत भागनी अणिओवाळा श्वेत छत्रनी पूर्ण शोभाने पामे छे. ॥ १०२ ॥

विशेषार्थ—आ श्लोकथी कवि चंद्रने छत्रनी साथे सरखावे छे. ते उंचा चैत्य उपर आवेलो चंद्र छत्रनी पूर्ण लक्ष्मीने-शोभाने प्राप्त करे छे. छत्रनी नीचे दंड होय छे, तेम चंद्रनी नीचे ते चैत्यनो उंचो ध्वजदंड छे. उंचे रहेला चंद्रे नक्षत्र-तारा मंडलने व्याप्त करेला छे, अने तेना मस्तक उपर आकाश आवेलुं छे. आथी मोतीओना हारना गुच्छवाळा छत्रदंडना जेवो देखाव लागे छे. अहिं अंबर शब्दना बे अर्थ थाय छे. ध्वज दंडना मस्तक उपर अंबर-आकाश आवेलुं छे अने अंबर-वस्त्र पण आवेलुं छे.

मोतीओने अने तारा मंमलने सरखावी कविए पूर्णोपमा अलंकार वर्णव्यो छे. १०२

दिव्यश्रव्यावधीनां द्विषति मधुमुचां वेणुवीणारवाणां
तूर्योद्गीर्णे श्रवांसि स्थगयति निनदे निर्दयास्फारघोरे ।
अन्योन्यं गात्रगाढव्यतिकरनिहताशेषपाणिक्रियाणां
यात्रायां नेत्रनृत्यैर्भवति तनुभृतां यत्र कृत्योपदेशः ॥ १०३ ॥

अवचूर्णिः—दिव्यश्रव्यावधीनां मधुमुचां वेणुवीणारवाणां द्विषति तूर्योद्गीर्णे निर्दयास्फारघोरे निनदे श्रवांसि स्थगयति यत्र प्रासादे अन्योन्यं गात्रगाढव्यतिकरनिहताशेषपाणिक्रियाणां तनुभृतां नेत्रनृत्यैः कृत्योपदेशो भवति । द्विषोवातृश इति वेणुवीणारवाणामिति षष्ठी । तत्र गाढव्यतिकरेण निहता हता अशेषपाणिक्रिया येषां तनुभृतां । घोरे रौद्रे ॥ १०३ ॥

भावार्थ—जे चैत्यनी अंदर दिव्य गायननो अवधि रूप अने माधुर्यने

वर्षनारा वेणु, अने वीणाना शब्दोनो द्वेष करनार तेमज निर्दय ताडनथी भयंकर एवो वाजित्रोनो शब्द जेमनी कर्णेन्द्रियोने ढांकी देतो हतो अने परस्पर शरीरना गाढ दबाणने लइने जेमनी हाथनी बधी क्रिया हणाइ गइ हती; एवा यात्राने विषे आवेला प्राणीओना बधा कार्योनो उपदेश नेत्रोना नचाववाथी थाय छे. १०३

विशेषार्थ—ते कुमारविहार चैत्यनी अंदर वाजित्रोनो ध्वनि एटलो मोटो थतो हतो के, जे ध्वनि दिव्य गायनना अवधि रूप अने माधुर्य वर्षनारा वेणु तथा वीणाना ध्वनिओनो द्वेष करतो हतो अर्थात् तेमने दबावी देतो हतो. ते ध्वनिने लइने त्यां यात्राने माटे आवेला लोकोना कान बेहेरा थइ जता तेथी तेओ एक बीजाना शब्दने सांभळी शकता नहता. वळी तेमना शरीर परस्पर भीडमां आवता अने तेथी तेमना हाथ बंधाइ जता हता.

ज्यारे वाजित्रोना ध्वनिथी कान अने जीभने बन्ने हाथ अटकी पडता, त्यारे तेओ आंखोना इसाराथी परस्पर कार्यनी समजूती आपता हता. आ उपरथी चैत्यना वाजित्रोनी अने यात्राना उत्सवनी उन्नति दर्शावी छे. १०३

एणांकांशुनिभां प्रभां जवनिकाभ्रांत्योत्तरंगोद्भवा-
मुत्क्षिप्य प्रविशंति यत्र सरलस्वांता जनाः केचन ।
केचिद्रूप्यकपाटसंपुटपरीरोधाववबोधाकुलाः
द्वारोद्घाटनिमित्तमंतिकगतं याचंति देवार्चकम् ॥ १०४ ॥

अवचूर्णिः—यत्र प्रासादे एणांकांशुनिभां उत्तरंगोद्भवां प्रभां जवनिकाभ्रांत्या उत्क्षिप्य सरलस्वांताः केचन जनाः प्रविशंति । रूप्यकपाटसंपुटपरीरोधाववबोधाकुलाः केचिद् द्वारोद्घाटनिमित्तं अंतिकगतं देवार्चकं याचंति । सरलं ऋजु स्वांतं मनो येषां । कपाटानां संपुटं योजनं दानं वा तेन परी-

रोधः स्खलनं तस्य अवबोधो ज्ञानं तेन आकुलाः ॥ १०५ ॥

भावार्थ—जे चैत्यनी अंदर केटलाएक सरल हृदय वाला लोको चंद्रना किरणोना जेवी द्वारना उपरना भागना मणिओनी कांतिने पडदानी भ्रांतिथी उंची करी तेमां प्रवेश करे छे अने केटलाएक तेने 'रुपानां कमाड वासी अटकायत करी छे' एम जाणी आकुल-व्याकुल थइ द्वार उघाडवाने माटे पासे रहेला पूजारी (गोठी) ने विनवे छे. १०५

विशेषार्थ—आ श्लोकमां ग्रंथकारे भ्रांतिमान् अलंकारथी चैत्यना द्वारनी शोभा वर्णवेली छे. चैत्यना द्वारना उपरना भागनी चंद्रना किरणोना जेवी रुपेरी कांति पडे छे, तेने केटलाएक भोळा दिलना लोको 'आ पडदो छे' एवुं धारी तेने उंचे करी अंदर प्रवेश करे छे. अने केटलाएक लोको 'आ द्वारनां रुपेरी कमाड बंध करी अटकायत करी छे' एवुं जाणी

अंदर जवाने आकुल-व्याकुल थइ द्वार उघाडवाने माटे गोठीने विनंति करे छे. १०४

स्वच्छेंदुग्रावववेद्यां विचकिलरुचयः स्वर्णवर्णाः सुवर्ण-
स्तंभाभ्यर्णेषु नीलोपलतटनिकरे बर्हिणस्कंधभासः ।
सास्राः सूर्याश्मभाभिः करिषु च चकिता विस्मिताः पुत्रिकाभि-
र्यद्व्याख्यावेश्मरंगे दधति नटभटीपाटवं पूःपुरंध्यः ॥ १०५ ॥

अवचूर्णिः—स्वच्छेंदुग्रावववेद्यां विचकिलरुचयः स्वर्णस्तंभाभ्यर्णेषु स्वर्णवर्णाः नीलोपल-तटनिकरे बर्हिणस्कंधभासः सूर्याश्मभाभिः सास्राः सबाष्पाः चपुनः करिषु चकिताः पुत्रिकाभिः वि-स्मिताः पूःपुरंध्यः नटभटीपाटवं दधति धरंति । मल्लिका स्याद्विचिकिलः । तटं तीरं । स्कंधो गलः । पूःपुरंध्यः नगरनार्यः ॥ १०५ ॥

ભાવાર્થ—સ્વચ્છ એવા ચંદ્રકાંત મણિઓની વેદિકાને વિષે મલ્લિકાનાં પુષ્પ જેવી કાંતિવાળી, સુવર્ણના સ્તંભની સમીપ સુવર્ણી રંગવાળી, નીલમણિના તટ પાસે મયૂર પક્ષીના ગળાના જેવી કાંતિવાળી, સૂર્યકાંત મણિની કાંતિઓથી નેત્રમાં અશ્રુવાળી થતી, હાથીઓનાં ચિત્રોને લઇને ભય પામતી અને પુતળીયોથી વિસ્મય પામતી નગરની સ્ત્રીઓ જે ચૈત્યની વ્યાખ્યાનશાળાની રંગભૂમિ ઉપર નટડીઓના ચાતુર્યને ધારણ કરતી હતી. ૧૦૯

વિશેષાર્થ—આ શ્લોકથી ગ્રંથકાર કુમારવિહાર ચૈત્યની પાસે આવેલી વ્યાખ્યાનશાળાનું વર્ણન કરે છે. તે વ્યાખ્યાન શાળાને રંગભૂમિનું અને તેની અંદર આવતી સ્ત્રીઓને નટડીઓનું રૂપક આપે છે. નટડીઓ જેમ વિવિધ વર્ણના વેષ પેહેરી રુદનનો, ભયનો અને વિસ્મયનો દેખાવ કરે છે તેમ તે વ્યાખ્યાનશાલામાં નગરની સ્ત્રીઓનો તેવો દેખાવ થતો હતો. તે સ્ત્રીઓ ચંદ્રકાં-

तमणिनी वेदीनी समीप रहेवाथी, मल्लिकाना पुष्पना जेवा धोला वर्णने धा-
रण करती हती. सुवर्णना स्तंभोनी पासे सुवर्णवर्णी थती हती अने नील-
मणिनी पासे मयूरनी डोकना जेवी देखाती हती. आ प्रमाणे पंचरंगी बनती
ते स्त्रीओ सूर्यकांतथी अश्रुवाली थती, हस्तीओनां चित्रोथी त्रय पामती अ-
ने पुतलीओने जोइ विस्मय पामती हती. आ उपरथी व्याख्यानशालानी स-
मृद्धि पण कविए दर्शावी छे. १०५

यत्र श्रद्धातुराणामजिरभुवि परिभ्राम्यतां बिंबयोगात् ।
व्यालोलां वीक्षमाणो हरितमणिमयीं नेत्रवल्लीं स्फटासु ।
साक्षाद्भोगींद्रशंकाप्रभवभयभवद्वेपथुन्यस्तपाणिः ।
पूजां पार्श्वस्य लोको विरचयति सदा पूजकानां करेण ॥१०६॥

अवचूर्णिः—यत्र प्रासादे अजिरभुवि परिभ्राम्यतां श्रद्धातुराणां पूजकानां करेण स्फटासु हरितमणिमयीं नेत्रवल्लीं बिंबयोगाद्वीक्षमाणः साक्षाद्भोगींद्रशंकाप्रभवभयभवद्वेपथुः व्यस्तपाणिः लोकः पार्श्वस्य पूजां विरचयति । वेपथुः कंपः तेन व्यस्ताः पाणयो यस्य सः ॥ १०६ ॥

भावार्थ—जे चैत्यना आंगणामां भमता एवा श्रद्धालु पूजकोना नेत्रोना सर्पनी फणाओमां प्रतिबिंब पडवाना योगथी नीलमणिमय नेत्र रूप वेलने जोइ साक्षात् सर्पनी शंका थतां ते वडे उत्पन्न थयेला भयने लइने जेमने कंपारो थइ आवतां हाथ ढीला थाय छे, एवा लोको श्री पार्श्वनाथ प्रभुनी पूजा गोठीओने हाथे करावे छे. १०६

विशेषार्थ—ते चैत्यना आंगणामां श्रद्धालु पूजको फरता हता, तेमना नेत्रोनां पार्श्वनाथ प्रभुना मस्तके रहेला सर्पनी फणाओमां प्रतिबिंब जोइ, तेओ ‘ आ प्रत्यक्ष सर्पो छे ’ एम धारी मनमां शंकित थता हता, अने ते-

ना भयथी कंपायमान थता हता. तेथी प्रभुनी पूजा करवामां तेमनो हाथ अटकातो हतो. पछी तेओ गोठीओने हाथे प्रभुनी पूजा करावता हता. आ उपरथी कविए पार्श्वनाथ प्रभुना मस्तकपर छत्राकारे रहेला सर्पोनी मणिमय शोभा सूचवी छे. १०६

मध्ये मामुपनीय दर्शय मुखांभोजं कथंचिन्मनाक्
भ्रातर्यामिक कामिकस्य महतस्तीर्थस्य पार्श्वप्रभोः ।
इत्थं यत्र महोत्सवेषु जनतासंघट्टरुद्धाध्वनां
वृद्धानां वचनानि कस्य करुणां वर्षंति न श्रोत्रयोः ॥ १०७ ॥

अवचूर्णिः—हेयामिक भ्रातः मां मध्ये उपनीय कामिकस्य महतः तीर्थस्य पार्श्वप्रभोः मुखांभोजं कथंचित् कष्टेनापि मनाक् ईषत् दर्शय इत्थं यत्र प्रासादे महोत्सवेषु जनतासंघट्टरुद्धाध्वनां वृ-

ध्धानां वृध्धस्त्रीणां वचनानि कस्य श्रोत्रयोः करुणां न वर्षति । जनता जनसमूहः तस्य संघट्टः तेन रु-
ध्धो मार्गो यासां । उपनीय प्राप्य । कामान् ददातीति कामिकः कामद इत्यर्थः ॥ १०७ ॥

ज्ञावार्थ—" हे ज्ञाइ पेहेरागीर, मने कष्टथी वचमां लइ जइ का-
मने आपनारा मोटा तीर्थरूप श्री पार्श्वनाथ प्रज्ञुनुं मुखकमल जरा बता-
व " आ प्रमाणे जे चैत्यना महोत्सवमां लोकोना समूहथी जेमनो मार्ग
रुंधाएलो छे, एवी वृद्ध स्त्रीओना वचनो कोना कानमां करुणाने वर्षाव-
तां नथी. ? १०७

विशेषार्थ—आ श्लोकथी ग्रंथकार ते कुमारविहार चैत्यना महोत्स-
वमां थती लोकोनी ज्ञीम्नुं विशेषवर्णन करे छे. ते ज्ञीममां प्रज्ञुना दर्शनने
नहीं प्राप्त करी शकती एवी मोशीओ पेहेरेगीरोने प्रार्थना करे छे के, "हे
ज्ञाइ, अमने प्रज्ञुना मुखकमलना जरा दर्शन कराव." आ तेमनां वचनो

सांजळी दरेक पुरुषने करुणा उत्पन्न थती हती. १०७

भूम्ना धूनयतोः शिरः प्रतिदिनं व्यालोक्य लोकोत्तरान्
तांस्तान् यत्र विचित्ररत्नसुभगान् कुंभांस्तथा मंडपान् ।
साश्चर्यं प्रतितोरणं प्रतिशिलं प्रत्युत्सवं तिष्टतो–
र्भेदः कोऽपि न लक्ष्यते सहृदयैरागंतुवास्तव्ययोः ॥ १०८ ॥

अवचूर्णिः—यत्र प्रासादे प्रतिदिनं लोकोत्तरान् विचित्ररत्नसुजगान् तान् तान् कुंजान् तथा जंरुपान् विल्लोक्य जूम्ना बाहुल्येन शिरः धूनयतोः साश्चर्यं साद्जुतं प्रतितोरणं प्रतिशिलं प्रत्युत्सवं तिष्टतोः आगंतुवास्तव्ययोः सहृदयैः कोपि जेदो व्यक्तिः न लक्ष्यते । आगंतुः प्राघुर्णकः ॥ १०८ ॥

जावार्थ—प्रति दिवस लोकोत्तर दिव्य अने विचित्र रत्नोथी सुंदर एवा ते ते कलशो अने ते ते मंडपोने जोइ पोताना मस्तकने अतिशय धुणा-

વતા અને દરેક તોરણે, દરેક શિલાએ અને દરેક ઉત્સવે આશ્ચર્ય સહિત ર- હેતા એવા પરદેશી મીજમાન અને ત્યાંના વતનનીવચ્ચે કોઇ જાતનો ભેદ વિદ્વાન પુરુષોના જાણવામાં આવતો નહોતો. ૧૦૮

વિશેષાર્થ—તે ચૈત્યની અંદર બાહેરથી આવેલો પરદેશી અને ત્યાંનો વતની—એ બંનેની વચ્ચે કોઇ જાતનો તફાવત જોવામાં આવતો નહોતો; કારણ કે ત્યાંના હંમેશના વતનનીને તે ચૈત્યને જોઇ જેવું આશ્ચર્ય થતું, તેવુંજ પરદેશી નવા માણસને પણ થતું હતું. હંમેશાં ત્યાં રહેલા દિવ્ય અને વિચિત્ર રત્નોથી સુંદર એવા કલશો અને મંડપો જોઇ વિદેશી અને વતની બંને સરખી રીતે મસ્તક ધુણાવતા હતા. વલી તે ચૈત્યના દરેક તોરણે, દરેક મણિમય શિલાએ અને દરેક ઉત્સવે તેઓ બંને સરખી રીતે આશ્ચર્ય પામતા હતા. તે ઉપરથી વિદ્વાન પુરુષો પણ વિદેશી અને વતનીનો તફાવત જાણી

शकता न हता. १०७

गीतोद्गारोपहूतश्रुतिभिरभिनवोत्कृष्टनाट्यप्रबंध-
प्रारंभाक्रांतनेत्रैः स्नपनपरिमलोपार्जितघ्राणमैत्र्यैः ।
नित्यैर्नैमितिकैश्च प्रतिदिवसभवैरुत्सवैरेवयस्य
भ्रश्यत्कामार्थकृत्यः स्पृशति पुरजनः कोपि निर्वेदमंतः ॥१०९॥

अवचूर्णिः—यस्य प्रासादस्य गीतोद्गारोपहूतश्रुतिभिः चपुनः अभिनवोत्कृष्टनाट्यप्रबंध प्रारंभाक्रांतनेत्रैःस्नपनपरिमलोपार्जितघ्राणमैत्र्यैःनित्यैःनैमित्तिकैःप्रतिदिवसभवैः उत्सवैःएव निश्चयेन भ्रश्य-त्कामार्थकृत्यः कोऽपि पुरजनः अंतर्मनसि निर्वेदं वैराग्यं स्पृशति । गीतस्य उद्गारा उत्पत्तयः तेषु उपहूता आमंत्रिताः श्रुतयः कर्णा यैरुत्सवैः ॥ १०७ ॥

भावार्थ—गायनना उद्गारोमां जेमणे कर्णेंद्रियोने आमंत्रण करेलुं छे, नवीन अने उत्कृष्ट नाटकोना प्रबंधना आरंभे जेमां नेत्रोने दबावेलां छे

अने स्नात्रना सुगंधे जेमां नासिका इंद्रियनी मित्रता प्राप्त करी छे एवा जे चैत्यना नित्य अने नैमित्तिक उत्सवोथी जेमना कामार्थना कार्यो निश्चय-थी नाश पामेला छे एवो कोइ नगरजन हृदयमां निर्वेद—वैराग्यनो स्पर्श करे छे, एटले तेमने वैराग्य उत्पन्न थाय छे. १०ए

विशेषार्थ—ग्रंथकार आ काव्यथी ते चैत्यना नित्य अने नैमित्तिक उत्सवोमां वैराग्य रसनुं दर्शन करावे छे. ज्यारे माणसने वैराग्य थाय छे, त्यारे तेनां कर्णेंद्रिय, नेत्रेंद्रिय अने नासिकेंद्रिय वगेरे पोतानी काम—वासनाने छोमी दे छे. अने अंतरमां निर्वेद—वैराग्य उत्पन्न थाय छे, तेम अहीं चैत्यमां आवेला नगर जनने माटे पण तेम बने छे. त्यां थतां संगीतने लइने तेनुं कर्णेंद्रिय, नवीन नाटको जोवाने लइने नेत्रेंद्रिय अने स्नात्र जलनी खुशबोने लइने नासेंद्रिय—तेमां तल्लीन बनवाथी ते इंद्रियोनी बीजी काम-

ना नाश पामे छे. तेथी तेना हृदयमां निर्वेद—वैराग्य उत्पन्न थयेलो देखाय छे. आ उपरथी ते चैत्यमां उत्सवोने विषे संगीत, नाटक अने स्नात्रविधि जारे आडंबरथी थता हता, एम दर्शाव्युं छे. १०९

व्यालैर्बालान्गजेंद्रैः कपिकरभरथैर्ग्राम्यसार्थांश्चरित्रैः
श्रद्धालून् देवतानां नृपतिमृगदृशो वासवांतःपुरीभिः ।
नानानाट्यैर्नटौघान् मरुदसुरभवैः संगरैर्वीरवर्गान्
एकाकिन्येव लोकांस्तरलयति मुहुर्यत्र चित्रस्य संसत् ॥११०॥

अवचूर्णिः—यत्र प्रासादे चित्रस्य एकाकिनी एव संसत् सभा मुहुः वारंवारं व्यालैः दुष्टैः गजेंद्रैः बालान् कपिकरभरथैः ग्राम्यसार्थान् देवतानां चरित्रैः श्रद्धालून् वासवांतःपुरीभिः इंद्राणीभिः नृपतिमृगदृशः नानानाट्यैः नटौघान् मरुदसुरभवैः संगरैः संग्रामैः वीरवर्गान् लोकान् तरलयति। कपयो वानराः । करभा उष्ट्राः । ॥ ११० ॥

ભાવાર્થ—જે ચૈત્યની અંદર આવેલી ચિત્રશાળા એકલીજ વારંવાર લોકોને ચપલ કરે છે. દુષ્ટ હાથીઓથી બાલકોને, વાનર, ઉંટ અને રથોથી ગામડીયા લોકોના સમૂહને, દેવતાઓનાં ચરિત્રોથી શ્રદ્ધાલુ—આસ્તિક લોકોને, ઇંદ્રાણીઓથી રાજાઓની રાણીઓને, વિવિધ જાતનાં નાટકોથી નટલોકોના સમૂહને અને દેવ અને અસુરોના સંગ્રામોથી વીર નરોને ચપલ કરે છે. ૧૧૦

વિશેષાર્થ—આ શ્લોકમાં ગ્રંથકારે કુમારવિહાર ચૈત્યની ચિત્રશાલાનું વર્ણન કરી બતાવ્યું છે. તે ચિત્રશાલામાં એવાં સુંદર અને ચિત્તાકર્ષક ચિત્રો હતાં કે જે આબેહૂબ લાગવાથી જુદા જુદા પ્રેક્ષકોના મન ઉપર જુદી જુદી અસર કરતાં હતાં. ઉન્મત હાથીનાં ચિત્રો જોઇ બાલકો ચપલ થતા હતા. વાનર, ઉંટ અને રથોનાં ચિત્રો ગામડીઆ લોકોને ચપલ કરતાં હતાં. તેવીરીતે દેવતાઓનાં ચરિત્રો આસ્તિકોને ઇંદ્રાણીઓનાં ચિત્રો રાજાઓની રાણીઓને,

नाटकोनां चित्रो नट लोकोने अने देवता तथा दैत्योनां युद्धनां चित्रो शूर-वीरोने चपल करतां हतां. ११०

शुभ्रं चंद्राश्मकांत्या नवयवहरितं नीलरत्नप्रभामि—
र्मुक्तादामावचूलैः प्रचलदलिकुलं लब्धमल्लीविलासैः ।
सर्वैरष्टापदस्थैर्मुकुरितकुतुकैर्वीक्ष्यमाणं जिनेंद्रैः ।
प्रायः सर्वस्य दृष्टिः प्रविशति रतये यस्य लीलानिशांतम् ॥ १११ ॥

अवचूर्णिः—चंद्राश्मकांत्या शुभ्रं नीलरत्नप्रभाभिर्नवयवहरितं लब्धमल्लीविकाशैः मुक्तादामावचूलैः प्रचलदलिकुलं अष्टापदस्थैः मुकुरितकुतुकैः सर्वैः जिनेंद्रैः वीक्ष्यमाणं यस्य प्रासादस्य लीलागृहं प्रायः सर्वस्य दृष्टिः रतये प्रविशति ॥ १११ ॥

भावार्थ—जे कुमारविहार चैत्यनुं लीलागृह चंद्रकांत मणिनी कांति-

थी शुभ्र हतुं. नीलमणिनी कांतिओथी नवा यव—ज्वारा जेवुं लीलुं हतुं. मल्लिकाना पुष्पना जेवा विकाशने प्राप्त करनारा मोतीओना हारना गुच्छोथी चलायमान एवा भ्रमराओथी युक्त हतुं. आ देवलना लीलागृह समीपे अष्टापदनी रचना हती, तेमां रहेलरत्ननी प्रतिमाओमां आ देवलनी कौतुक रचना प्रतिबिंबीत थयेली ते जीनेन्द्रोए जोवातुं तेवा लीलागृहमां प्राये करीने सर्वनी दृष्टि प्रीतिने माटे प्रवेश करे छे. १११

विशेषार्थ—ते चैत्यनी अंदर आवेलुं लीलागृह चंद्रकांत मणिनी कांतिथी धोलुं अने नीलरत्ननी कांतिथी नीलवर्णी हतुं. तेमज मल्लिकाना जेवा मुक्ताफलना हारथी भ्रमराओ भ्रांतिवडे तेमां आवता हता. आवुं मनोहर लीलागृह समीपे अष्टापदनी रचना हती त्यां रहेली रत्ननी प्रतिमाओमां आ देवलनी कौतुक रचना प्रतिबिंबीत थयेली ते जीनेंद्रोए जोवातुं तेवा लीला-

गृहमां प्रायः सर्वनी दृष्टि प्रवेश करती हती. अहीं कवि अर्थांतर न्यास अलंकारथी कहे छे के, सर्वनी दृष्टि प्रीतिने अर्थे प्रवेश करे छे. तेथी ते अष्टापद उपर रहेला जिनेंद्रो तेने जोता हता. आ उपरथी लीलागृहनी उत्कृष्टता कविए दर्शावी छे. १११

औत्सुक्यं कामुकानां मनसि विदधती तात्त्विकानां विवेकं
काष्ठामारोपयंती मुहुरुपदिशती धार्मिकाणां जुगुप्साम् ।
पांचाली यत्र काचिच्चपलकपिकराकृष्टनीवीनिवेशा
व्रीडां वृद्धासु हास्यं युवतिषु तनुते कौतुकं बालिकासु ॥ ११२ ॥

अवचूर्णिः—यत्र प्रासादे कामुकानां मनसि औत्सुक्यं विदधती तात्त्विकानां विवेकं काष्ठां निश्चयं आरोपयंती मुहुः वारंवारं धार्मिकाणां जुगुप्सां उपदिशती चपलकपिकराकृष्टनीवीनिवेशा

काचित् पांचाली वृद्धासु व्रीडां युवतिषु हास्यं बालिकासु कौतुकं तनुते । चपलो यः कपिः वानरः तस्य यः करः तेन आकृष्टा या नीवी श्रोणिस्थवस्त्रं तस्या निवेशः प्रवेशो यस्याः सा । जुगुप्सां निंदाम् ॥ ११२ ॥

भावार्थ—जे चैत्यमां चंचल वानरना हाथथी जेनुं कटीवस्त्र खेंचायेलुं छे एवी कोइ पुतली कामीओना मनमां उत्कंठा करती, तत्त्वज्ञानीओना मनने विवेकनो निश्चय करावती अने धर्मी जनोने वारंवार निंदानो उपदेश करती थकी वृद्ध स्त्रीओने लज्जा, युवतिओने हास्य अने बालिकाओने कौतुक वधारती हती. ११२

विशेषार्थ—ते चैत्यनी अंदर कोइ एवी पुतली रचेली हती के जेना कटीभाग उपरथी वानरे वस्त्र खेंचेलुं हतुं. तेने जोइ कामिओना मनमां उत्कंठा थती हती, तत्त्वज्ञानीओना मनमां विवेकनो निश्चय थतो हतो अने

धर्मी जनोने मनमां सूग चडती हती. तेमज तेने जोइने वृद्ध स्त्रीओ शरमाती हती, युवान स्त्रीओने हास्य आवतुं हतुं अने बालिकाओने कौतुक थतुं हतुं. आ उपरथी कविए ते चैत्यमां चित्रनी शिल्पकलानी प्रौढता दर्शावी छे. ११२

उष्णीषी लंबकूर्चो गुरुतरजठरः पीवरोरुस्फिगंघ्रि-
र्निम्नग्रीवोऽल्पकायः प्रलघुमुखशिरोनासिकाकर्णनेत्रः ।
श्रोणीबद्धासिधेनुर्मृगहननचलत्पुत्रिकाभ्यर्णवर्ती
यस्मिन्नेकः किरातस्तटघटितवपुर्दृष्टिदोषं रुणद्धि ॥ ११३ ॥

अवचूर्णिः—यस्मिन् प्रासादे उष्णीषी लंबकूर्चः गुरुतरजठरः पीवरोरुस्फिगंघ्रिः नम्रग्रीवः अल्पकायः प्रलघुमुखशिरोनासिकाकर्णनेत्रः श्रोणीबद्धासिधेनुः मृगहननचलत्पुत्रिकाभ्यर्णवर्ती तटघटितवपुः एकः किरातो दृष्टिदोषं रुणद्धि। उष्णीषं मूर्द्धवेष्टनं तद्वान् यद्वा वनपुष्पमयूरपिच्छादिमयावतंसः।

श्रोणी कटी तस्यां बध्धा असिधेनुः क्षुरिका येन सः । मृगाणां हननं तस्मिन् चलन् गच्छन् पुत्रिकाया अभ्यर्णे समीपं तत्र वर्त्ती । तटे तीरे पाषाणघटितं वपुर्यस्य सः । पीवरौ पुष्टौ ऊरू स्फिगौ युगौ अंघ्री पादौ च यस्य सः ॥ ११३ ॥

भावार्थ—जे चैत्यना तट उपर पाषाणथी जेनी मूर्ति घडेली छे एवो एक किरात-भिल्ल राख्यो छे, ते दृष्टि दोषने (नजर दोषने) अटकावे छे. ते भिल्लने माथे पाघडी छे. तेनी दाढी मूछ लांबी छे. अतिशय मोटुं पेट छे. साथल, कटीभाग अने पग पुष्ट छे. डोक टुंकी छे. काया ठींगणी छे. मुख, माथुं, नाक, कान अने आंखो नाना छे. कटी उपर छरी बांधेली छे अने ते मृगने मारवाने जतो एक पुतळीनी पासे रहेलो छे. ११३

विशेषार्थ—जे अति सुंदर पदार्थ होय तेने कोइनी नजर न लागे तेने माटे तेनीपासे कोइ कद्रूपी पदार्थ राखवो जोइए, एवा इरादाथी ते चै-

त्यनी चित्रशालानी नजीक एक स्त्रीनुं पुतळुं उभुं करेलुं छे, तेनुं वर्णन कवि-
ए आ श्लोकथी आपेलुं छे. ११३

युग्मम् ।

कर्पूरागुरुकल्पमानविविधस्नात्रं भ्रमत्कामिनी–
संघट्टत्रुटितार्द्धहाररभसभ्रश्यन्नितंबांबरम् ।
वक्षःपीडनलभ्यमानसरणि ज्येष्ठानुषंगत्रपा–
ताम्यत्पौरकुलांगनं नववधूसंप्रार्थ्यमानात्मजम् ॥ ११४ ॥
खेलन्मंगलगीति दीव्यदमरीसार्थपठन्मागधं
नृत्यत्पौरपुरंध्रि याचकशतव्यातीर्यमाणांगदम् ।

स्नात्रांबुग्रहणोच्छलत्पटुचटुव्याहारमुच्चैर्ध्वनन्
नानानाटकमर्दलं प्रतिकलं यद्वर्त्तते सर्वतः ॥ ११५ ॥

अवचूर्णिः—कर्पूरागुरुकल्पमानविविधस्नात्रं भ्रमत्कामिनीसंघट्टत्रुटितार्द्धहाररत्नसभ्रश्यन्निर्तंबाबरं वक्षःपीडनलभ्यमानसरणि ज्येष्ठानुषंगत्रपाताम्यत्पौरकुलांगनं नववधूसंप्रार्थ्यमानात्मजं खेलन्मंगलगीति दीव्यदमरीसार्थं पठन्मागधं नृत्यत्पौरपुध्रि याचकशतव्यातीर्यमाणांगदं स्नात्रांबुग्रहणोच्छलत्पटुचटुव्याहारं उच्चैर्ध्वनन्नानानाटकमर्दलं प्रतिकलं यच्चैत्यं सर्वतः वर्त्तते । वक्षः हृदयं तस्य पीडनं दलनं तेन लभ्यमाना सरणिः मार्गो यस्मिन् तत् । कर्पूरागुरुभ्यां मिश्रितं यत् पानीयं तेन कल्पमानं क्रियमाणं स्नात्रं यस्मिन् । अर्द्धहारः चतुःषष्टिसरो हारः ॥ ११४—११५ ॥

भावार्थ—जे कुमारविहार चैत्य सर्व रीते क्षणे क्षणे एवुं बने छे के, जेनी अंदर कपूर अने अगरु चंदनथी विविध जातनां स्नात्रो थयां करतां हतां. ज्यां फरती स्त्रीओनी भीडने लइने चोसठ शेरना, अष्टदश शेरना, तथा नव-

शेरना हारो तुटी जता अने उतावळथी तेमना कटी भागनां वस्त्रो खशी जतां हतां. गलीओना दबावाथी ज्यां रस्तो मेळवी शकातो हतो. जेमां पोताना वल्लभोनी साथे अथडावाथी नगरनी कुळवान् स्त्रीओ शरमाइने खेद पामती हती. ज्यां नवी परणेली वधूओ पुत्रने माटे प्रार्थना करती हती. ज्यां मंगळिक गीतो गवातां हतां, ज्यां देवीओना समूह क्रीडा करता हता. ज्यां चारण भाटो कविताना पाठ भणता हता. ज्यां नगरनी स्त्रीओ नृत्य करती हती. ज्यां सैकडो याचकोने बाजुबंधनां दान अपातां हतां. स्नात्रजल लेवाने माटे ज्यां चतुराइ अने खुशामतवाळा उद्गारो उछळता हता. अने ज्यां विविध प्रकारनां नाटकनां वाजाओ उंचे स्वरे वागतां हतां. ११४—११५

विशेषार्थ—ग्रंथकारे आ छेल्लां बे काव्यथी कुमारविहार चैत्यनुं सर्व प्रकारनुं उपसंहार तरीके वर्णन करी बताव्युं छे. अने तेथी ते चैत्यमां थतां

स्नात्रो, दर्शननी त्रीमो, प्रार्थनाओ, मंगलगीतो, देवीओनी क्रीमाओ, चारण-नाटनी कविताओ, याचकोने दानो, स्नात्रजलने माटे मांगणीओ अने नाटकोना वाजिंत्रोना ध्वनिओनुं दिग्दर्शन कराव्युं छे. ११४—११५

आस्तां तावन्मनुष्यः प्रकृतिमलिनधीः शाश्वतालोकचक्षु–
र्वक्तुं वक्त्रैश्चतुर्भिर्विधिरपि किमलं तस्य सौंदर्यलक्ष्मीम् ।
क्षीणाशेषाभिलाषः परमलयमयं स्थानमाप्तोऽपियस्मि–
न्नास्थां श्रीपार्श्वनाथस्त्रिभुवनकुमुदारामचंद्रश्चकार ॥ ११६ ॥

अवचूर्णिः—तावत् आदौ प्रकृतिमलिनधीः मनुष्यः आस्तां शाश्वतालोकचक्षुः विधिरपि चतुर्भिः वक्त्रैः तस्य सौंदर्यलक्ष्मीं वक्तुं किं अलं समर्थः स्यात् अपितु न तस्य कस्य यस्मिन् त्रिभुवनकुमुदारामचंद्रः क्षीणाशेषाभिलाषः परमलयमयं स्थानं आप्तोऽपि श्रीपार्श्वनाथः आस्थां आस्थानं चकार । प्रकृत्या स्वभावेन मलिना समला बुद्धिर्यस्य शाश्वत आलोक उद्योतः स एव चक्षुर्यस्य सः

किं रूपार्थः । अलं समर्थः । क्षीणाः क्षयंनीताः अशेषाः संपूर्णाः अभिलाषा वांछा यस्य परमः प्रकृष्टो लयो ध्यानं स प्रकृतो यस्मिन् परमलयमयः । प्रकृते मयट् । त्रिभुवनं स्वर्भूर्भुवः तात्स्थ्यात्तद्व्यपदेश इति न्यायात् सुरासुरनराः त एव कुमुदारामः तत्र चंद्र इव चंद्रः चंद्रसदृश इत्यर्थः । पक्षे रामचंद्रः श्रीहेमाचार्यसहाध्यायी महासौभाग्यवान् श्रीरामचंद्रगणी इति कर्तृनाम ॥ १६ ॥

भावार्थ—प्रथम स्वभावथीज मलिन बुद्धिवाला माणसनीवातती एक तरफ रही, परंतु शाश्वत—हंमेशना उद्योतरूपी नेत्रवालो विधि—ब्रह्मा पण पोताना चार मुखथी ते चैत्यना सौंदर्यनी लक्ष्मीने कहेवाने शुं समर्थ थाय ? अर्थात् न थाय. कारणके, त्रणभुवनरूपी पोयणाना उपवनमां चंद्र समान अने जेमनी सर्व अभिलाषाओ क्षय पामी छे एवा श्री पार्श्वनाथ प्रभु परम ध्यानमय एवा स्थानने—मोक्षने प्राप्त थयेला छे, ते छतां जे कुमारविहार चैत्यमां आस्था (स्थान) करीने रहेला छे. ११६

विशेषार्थ—आ श्लोकथी ग्रंथकार छेवट उपसंहार करीने कहे छे के, ते चैत्यनुं वर्णन मारा जेवा मनुष्यथी थइ शके तेम नथी, कारणके, मनुष्य-

नी बुद्धि मलिन होय छे. तेवा मनुष्यनी वाततो एक तरफ रही, पण नित्य उद्योतरूपी नेत्रवाळो अर्थात् दिव्य दृष्टिने धारण करनारो ब्रह्मा पण पोताना चार मुखथी ते चैत्यनुं वर्णन करवाने समर्थ नथी. कारणके, जे चैत्यनी अंदर निःस्पृह अने परम स्थानने प्राप्त थयेला पण पार्श्वनाथ प्रभुए रहेवाने आस्था करेली छे. एटले निःस्पृह अने परम पदने पामेला प्रभु जेमां आस्था करे तेवा चैत्यनुं वर्णन कोनाथी थइ शके छे? ग्रंथकारे छेवटना पदमां 'रामचंद्र' एवुं पोतानुं नाम पण दर्शाव्युं छे. आ ग्रंथना कर्त्ता 'रामचंद्र गणी' श्री हेमाचार्यना सहाध्यायी हता. ११६

इति श्रीरामचंद्रगणिविरचितं
श्रीकुमारविहारशतकम्

समाप्तम्.

श्रीरामचंद्र गणीए रचेल श्रीकुमारविहारशतक समाप्त थयुं.

श्रीमत्तपागच्छीयश्रीसोमसुंदरसूरि—
शिष्यश्रीविशालराजशिष्यपंडित—
विवेकसागर गणिशिष्यपंडितोत्तम—
विबुधराजसुधाभूषणगणिविरचिता
अवचूर्णिः समाप्ता ॥

श्री तपागच्छना श्री सोमसुंदरसूरिना शिष्य श्री विशालराज, तेमना शिष्य पंडित विवेक सागर गणी अने तेमना शिष्य पंडितोमां उत्तम अने विद्वानोना राजा समान श्री सुधाभूषण गणीए रचेली आ अवचूर्णि समाप्त थइ.

इति श्री रामचंद्रगणी विरचित.

श्री कुमारविहारशतक.